हिन्दी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा, कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna • Quarterly Magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada

वर्ष १२, अंक ४७, जुलाई २०१० • Year 12, Issue 47, July 2010

इस अंक में

सम्पादकीय		03
पाती		04
प्रज्ञा परिशोधन		07
संस्मरण		10
हिन्दी ब्लॉग में इन दिनों		12
कहानी		
टेलिफोन लाईन	● *तेजेन्द्र शर्मा*	17
पगड़ी	● *सुमन घई*	27
राम जाने ?	● *पंकज सुबीर*	33
संस्मरण		
रिश्ता	● *सुधा गुप्ता*	39
दृश्य-पटकथा-पात्र	● *शशि पाधा*	41
व्यंग्य		
बहुत पहले से ...	● *समीर लाल 'समीर'*	42
महानता का दौर	● *प्रेम जनमेजय*	44
कविताएं		
मेरी तन्हाईयों के ...	● *बी. मरियम*	59
तीन कविताएं	● *इला प्रसाद*	59
बेटी ब्याही गई है	● *दिविक रमेश*	60
नवजवानों	● *डॉ. गुलाम मुर्तजा*	61
नव अकुंर	● *अदिति मजूमदार*	61
महान हत्यारा	● *वेदप्रकाश बटुक*	61
ग़ज़ल	● *धनंजय कुमार*	53
नज़्म	● *प्रेम मलिक*	62
अन्य		
ललित निबंध	● *जितेन्द्र सहाए*	46
एक अध्ययन	● *डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान*	50
लघु कथाएं	● *दीपक 'मशाल'*	62
पुस्तक समीक्षा	● *डॉ. पुष्पा दुबे*	64
चित्रकाव्य कार्यशाला		67
विलोम चित्रकाव्य शाला		69
साहित्य समाचार		72
अधेड़ उम्र में थामी कलम	● *किरपाल कौर धीमान*	77

17 ◄

टेलिफ़ोन लाईन

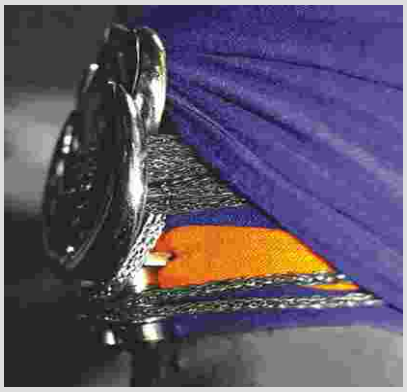

27 ►

पगड़ी

42

◄

बहुत पहले से उन कदमों की आहट

''हिन्दी चेतना'' सभी लेखकों का स्वागत करती है कि आप अपनी रचनायें प्रकाशन हेतु हमें भेजें। सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि ''हिन्दी चेतना'' साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन। एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन होना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक पढ़ने का आनन्द प्राप्त कर सकें। इसीलिए हम सभी लेखकों को आमंत्रित करते हैं कि हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें। अगले अंक के लिए अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें। अगर संभव हो तो अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें।

रचनाएँ भेजते हुये निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

1. हिन्दी चेतना अप्रैल, जुलाई, अक्टूबर तथा जनवरी में प्रकाशित होगी।
2. प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा।
3. पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर लिखित रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जायेंगी।
4. रचना के स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा।
5. प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जायेगा।
6. पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक
श्री श्याम त्रिपाठी, कैनेडा

सम्पादक
डॉ. सुधा ओम ढींगरा, अमेरिका

सहयोगी सम्पादक
डॉ. निर्मला आदेश, कैनेडा
अभिनव शुक्ल, अमेरिका
आत्माराम शर्मा, भारत
अमित कुमार सिंह, भारत

परामर्श मंडल
पद्‌मश्री विजय चोपड़ा, भारत
मुख्य सम्पादक, पंजाब केसरी पत्र समूह
पूर्णिमा वर्मन, शारजाह
सम्पादक, अभिव्यक्ति, अनुभूति
तेजेन्द्र शर्मा, लंदन
महासचिव, कथा यू.के.
डॉ. इला प्रसाद, अमेरिका
सरोज सोनी, कैनेडा
राज महेश्वरी, कैनेडा
श्री नाथ द्विवेदी, कैनेडा
डॉ. कमल किशोर गोयनका, भारत
चाँद शुक्ला 'हदियाबादी', डेनमार्क
डायरेक्टर, रेडियो सबरंग,
अध्यक्ष, वैश्विक समुदाय रेडियो प्रसारण माध्यम

विदेश प्रतिनिधि
अनिल शर्मा, थाईलैंड
यास्मिन त्रिपाठी, फ्रांस
राजेश डागा, ओमान
उदित तिवारी, भारत
डॉ. अंजना संधीर, भारत
विनोद चन्द्र पाण्डेय, भारत

सहयोगी
सुषमा शर्मा, आलोक गुप्ता, भारत
अदिति मजूमदार, डैनी कावल, कैनेडा

मुख्य पृष्ठ कलाकार : अरविन्द नराले

भावों की चेतनता में जब घुली समर्पित प्रेम की भाषा
रत्नाकर भी व्याकुल होकर नदियों से जा मिल आये हैं
बगिया में उड़ती सुगंध ने तितली को विश्वास दिलाया
जीवन की डाली पर रंग-बिरंगे पत्ते खिल आये हैं

अभिनव शुक्ल, अमेरिका

माननीय पाठको!
जैसा कि आपको विदित है, हर वर्ष ''हिन्दी चेतना'' किसी न किसी महान साहित्यकार पर विशेषांक निकालती है। इस वर्ष का विशेषांक श्रद्धेय मदन मोहन मालवीय जी पर केन्द्रित है। आपकी रचनाओं का स्वागत है। रचनाएँ शीघ्र भेजने का अनुरोध है।

श्याम त्रिपाठी
प्रमुख संपादक

Hindi Chetna is a literay magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. Shiam Tripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought many local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court, Markham, Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475 - 7165 Fax : (905) 475 - 8667
e-mail : hindicehetna@yahoo.ca

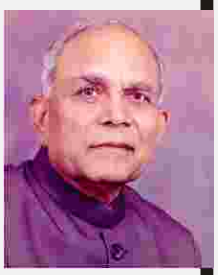

संपादकीय

अंग्रेज़ी भारतवासियों की हड्डियों में बस गई है, इसे निकालना कैंसर के रोग के समान है. अंग्रेज भारत को छोड़ कर चले गए किन्तु वे जाते-जाते भारतीयों के कान में अंग्रेज़ी का ऐसा गुरुमंत्र डाल गये कि भारतीय सब कुछ भूल सकते हैं लेकिन अंग्रेजी नहीं भुला सकते. आज अंग्रेजों को भारत छोड़े हुए अर्ध शताब्दी से अधिक समय हो चला है लेकिन भारत में अपनी राष्ट्र भाषा चातक की तरह उस बूंद का इंतज़ार कर रही है कि वह सुबह कभी तो आएगी और भारत का हर व्यक्ति हिंदी बोलेगा. एक स्वतंत्र राष्ट्र की परिभाषा क्या होनी चाहिए, यह बात अंग्रेजों से अधिक और कौन जानता होगा, जहाँ के हर प्राणी को अपने देश और अपनी भाषा पर गर्व है, स्वाभिमान है. तभी तो उस देश ने विश्व पर राज किया और अपनी भाषा के बलबूते पर अपनी संस्कृति और सभ्यता में सबको डुबा दिया. गांधी और बुद्ध का देश आज मदिरा और मांस का भक्षण करता है और भारतीय वेशभूषा को छोड़कर अंग्रेज़ी खान-पान और वेशभूषा को अधिक महत्व देता है. संसद से लेकर गाँव के खेतों में अंग्रेज़ी की ध्वनि सुनाई देती है. भारत के महान कवियों ने राष्ट्रप्रेम के कितने ही ओजपूर्ण गीत लिखे हैं. लेकिन उनके सारे सपने चूर चूर हो गये.

कुछ दिन हुए 'सार संसार' पत्रिका के सम्पादक व प्रकाशक श्री अमृत मेहता जी के एक लेख 'अंग्रेज़ी दां हिंदी वाले ले ही डूबे हिंदी को' को पढ़कर मेरे मन को बहुत दु:ख हुआ. उन्होंने इस लेख में स्पष्ट लिखा है कि राष्ट्रभाषा हिंदी के मार्ग में इन अंग्रेज़ी दां वाले हिंदी प्रेमियों की एक साजिश है, एक माफिया है जो भारत में हिंदी की जड़ें काट रहा है. इसमें लेखक, साहित्यकार, साहित्य अकादमियाँ सभी शामिल हैं. विश्व की सभी भाषाओं के साहित्य और लेखकों को उनकी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में पढ़ा जा सकता है, किन्तु हमारी हिंदी की पुस्तकें और अच्छे साहित्यकारों को भारत में ही रखा जाता है.

अमृत मेहता जी का यहाँ तक कहना है कि ये अंग्रेज़ी दां हिंदी वाले अपने स्वार्थ के लिए हिंदी को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हाशिये पर धकेल रहे हैं. इसमें वास्तविक दोष आश्रय देने वाली सरकारी एजेंसियों का है, केन्द्रीय साहित्य अकादमियों का है, तथा पूरे देश की साहित्य अकादमियों का है, जिन्होंने भारतीय भाषाओं के प्रसार और प्रचार के नाम पर भाई-भतीजावाद ही फैलाया है. अंग्रेज़ी को किसी भी अन्य भाषा से अधिक महत्व दिया है. विदेशों में काम कर रहे हमारे राजनयिक सभी अंग्रेज़ी दाँ हैं, बाहर जाकर यही आभास देते हैं कि हमारी मातृभाषा अंग्रेज़ी है और बदले में विदेश से आने वाले राजनयिक सभी अंग्रेज़ी बोलने वाले होते हैं, वे चीन जाते हैं तो चीनी सीख कर जाते हैं, लेकिन भारत आते हैं तो उन्हें हिंदी सीखने की कोई ज़रूरत नहीं होती. यहाँ उनका दायरा अंग्रेज़ीदानों में ही बना रहता है. मुंबई में कार्यरत विदेशी राजनयिक मराठी सीख लें तो कोई बड़ी बात नहीं, क्योंकि वहाँ जेएनयु नहीं है. दिल्ली में सारे लोग मुख्यत: इसी विश्वद्यालय से हैं, जो उन्हें बताते हैं कि हमारी मातृभाषा अंग्रेज़ी है. जो मैंने बर्लिन और स्विटज़रलैंड में गत मास अनुभव किया है, उससे मेरा सर शर्म से झुक गया है. कहीं भी मैं जाऊं मैं स्वयं को भारत का दूत समझकर ही आचरण करता हूँ, परन्तु हिंदी के मामले में मैं अब खुद को लाचार महसूस करने लगा हूँ. हिंदी के बुद्धिजीवी, जो इस तरह की धड़ेबंदी से बचे हुए हैं, उन्हें हिंदी वालों की ओर से इस आत्मघाती प्रवृत्ति के लिए आवाज़ उठानी होगी, ताकि मेरे जैसे लोग, जो विदेशी साहित्य को उसके विशुद्ध रूप-ठाठ नयी-नयी छटाओं में भारतीय पाठकों के पास लाना चाहते हैं, अपना समय अपने काम को दे सकें और हिंदी के दुश्मन हिंदीवालों की तरह व्यर्थ के वाद-विवादों में ही, अपना समय बर्बाद न करते रहें.

देश का भविष्य देश की भाषा, देश के स्वाभिमान के साथ भी जुड़ा होता है. 'जिस भाषा ने आपको रोज़ी-रोटी दी है, आप उसी की चादर उतारने पर उतारू हैं.' अमृत मेहता जी के इन वेदना भरे शब्दों के साथ मैं अपनी लेखिनी को विराम देता हूँ. मुझे आशा है कि पाठक इसे पढ़कर मनन करेंगे और अपने विचार हिंदी चेतना को भेजेंगे.

आपका
श्याम त्रिपाठी

हिन्दी चेतना को पढ़िये, पता है :
http://hindi-chetna.blogspot.com

हिन्दी चेतना की समीक्षा अवश्य देखें :
http://KathaChakra.blogspot.com

घर बैठे पुस्तकें प्राप्त करें :
http://www.pustak.org

हिन्दी चेतना को आप
ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
Visit our Web Site :
http://www.vibhom.com
or home page पर
publication में जाकर

पाती

देरी से मेल भेज पाने के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ. हिंदी चेतना का अप्रैल अंक बहुत अच्छा लगा. नराले जी की चित्र काव्य शाला हर बार ही बहुत रोचक और ज्ञानवर्धक होती है.

लेख, कविताएँ और कहानियाँ सभी बढ़िया लगीं. विशेष रूप से पुष्पा सक्सेना जी द्वारा रचित कहानी 'उसके हिस्से का पुरुष' बहुत अच्छी लगी.

शायद अधिकांश रचनाएँ रोचक होने के कारण अंक जल्दी समाप्त हो गया, ऐसा लगा इस बार का अंक जैसे छोटा हो.

त्रिपाठी जी और हिन्दी चेतना की टीम को हिंदी की नि:स्वार्थ भाव से सेवा करने के लिए साधुवाद. शुभ कामनाओं सहित, आप का स्नेहाकांक्षी.

गजेश धारीवाल, मस्कट

हिन्दी चेतना का अप्रैल-जून अंक मिला और अब धीरे-धीरे सारी सामग्री पढ़ रही हूँ. पत्रिका ने विविध आयामों को बखूबी समेटा है. चित्र भी सुरुचिपूर्ण लगे हैं. सस्नेह, सादर.

लावण्या शाह, यू.एस.ए.

पीडीऍफ़ में हिन्दी चेतना मिली. धन्यवाद. धन्यवाद इसलिए भी कि इस बार मुझे हिन्दी चेतना में स्थान मिला. एक लम्बे अन्तराल के बाद हिन्दी चेतना में अपनी रचना देख कर, निश्चित मन हर्षित हुआ. हिन्दी चेतना सुधा जी के मार्गदर्शन में फल-फूल रही है. यह देखा कर मन प्रफुल्लित हुआ है. स्नेह बनाएँ रखें.

पराशर गौड़, कैनेडा

हिन्दी चेतना का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ. धन्यवाद. सम्पादकीय पढ़ा. प्रवासी साहित्यकारों का तिरस्कार पढ़कर अत्यंत दु:ख हुआ. मन में एक प्रश्न अंकुरित हुआ -- क्या भारतीय ही हिंदी भाषा के सेवक हैं? अन्य देशों के निवासी जो हिंदी भाषी हैं या हिंदी भाषा की सेवा कर रहे हैं उनका कोई योगदान नहीं? मेरे विचार में भाषा का कोई धर्म, जाति या कोई सीमा नहीं होती और न ही भाषा किसी की जागीर होती है. भाषा तो केवल अपने विचार दूसरों तक पहुँचाने का माध्यम मात्र है. आपके विचार से मैं सहमत हूँ कि 'साहित्यकार तो संवेदनशील होते हैं, उनमें स्नेह की गंगा बहती है, वे तो सभी को गले लगाते हैं.'

प्रसन्नता होगी यदि हिंदी को सिर्फ भारतीय बनकर न सोचा जाए. सुधाजी को मेरी शुभकामनाएँ. आपका कहीं शरणार्थी, कहीं प्रवासी भाई.

डॉ. ग़ुलाम मुर्तजा शरीफ, अमेरिका

हिंदी चेतना का जनवरी 2010 का अंक मिला. मन प्रसन्न हो गया. पत्रिका का नया रूप रंग, नई साज-सज्जा एकदम मोहक और आकर्षक है. पत्रिका में कुछ नये लेखकों का भी प्रवेश हुआ है और रचनाएँ भी पठनीय हैं, मन को बांधे रखती हैं. हिंदी चेतना का यह कायाकल्प है. कैनेडा से इतनी सुंदर पत्रिका के प्रकाशन से भारत की साहित्यिक पत्रिकाओं का यह भ्रम टूटेगा कि भारत में ही सुंदर और आकर्षक पत्रिका छप सकती हैं. हिंदी चेतना ने वो करके दिखा दिया है, जिसकी आशा करना सहज नहीं है. इस अंक को निकालने में इसकी सम्पादक डॉ. सुधा ओम ढींगरा, संरक्षक प्रोफेसर श्याम त्रिपाठी आदि ने जो परिश्रम किया है तथा कल्पना का जो सृजनात्मक एवं कलात्मक प्रयोग किया है, वे निश्चय ही अभिनंदन के पात्र हैं. मेरा विश्वास है हिंदी चेतना के भावी अंकों में सम्पादक-प्रकाशक की सौन्दर्य दृष्टि का और भी निरंतर विकास होता जाएगा. इस अंक का भारत में जितना अधिक वितरण हो सके, उतना ही प्रवासी हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए उपयोगी होगा.

कमलकिशोर गोयनका, भारत

हिन्दी चेतना का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ. सम्पादक को अपनी रचनाएँ अपनी ही पत्रिका में छापने से सदैव बचना चाहिए. पंकज सुबीर की इस बात से सहमत नहीं हूँ. अगर कोई अच्छा लेखक सम्पादकीय गुण रखता है तो वह तो सम्पादक बनने से डरने लगेगा. पत्रिका और पाठक दोनों का नुकसान होगा. त्रिपाठी जी हमें सुधा ओम ढींगरा की रचनाओं से वंचित मत करें.

हरिंदर कौर, यू.एस.ए

पंकज सुबीर के गुरु जी ने उन संपादकों को देख कर यह कहा होगा-- सम्पादक को अपनी रचनाएँ अपनी ही पत्रिका में छापने से सदैव बचना चाहिए. जो सम्पादक पत्रिका में अपने को ही 'प्रमोट' करते हैं. पर यह बात हिन्दी चेतना की सम्पादक डॉ. सुधा ओम ढींगरा पर लागू नहीं होती. वे कई नए लेखकों और कवियों को सामने लाई हैं. बहुत से नए लिखने वालों को प्रोत्साहित करती हैं. स्वयं की तो उनकी रचनाएँ बहुत कम छपती हैं. मैं हिन्दी चेतना की पिछले पाँच सालों से नियमित पाठिका हूँ. हिन्दी चेतना के आधुनिक स्वरूप में उनका बहुत बड़ा योगदान है. मैं उनको व्यक्तिगत तौर पर नहीं जानती. हिन्दी चेतना को लेकर पत्र व्यवहार होता है. उन्होंने मुझे भी बहुत प्रोत्साहित किया है. किसी सम्पादक के लेखकीय व्यक्तित्व को इस तरह हतोत्साहित करना उचित नहीं लगा. पुष्पा सक्सेना की

कहानी 'उसके हिस्से का पुरुष', सूरज प्रकाश की 'खो जाते हैं घर', सुषम बेदी की कहानी 'खुल जा सिमसिम' बहुत पसन्द आई. सतपाल ख़याल और मेजर गौतम राजरिशी की ग़ज़लें मन को छू गईं.

मालविका वर्मा, बैंकाक, थाईलैंड

2010 के आरम्भ में ही हिन्दी चेतना के बदले स्वरूप का उपहार हमें मिला. अभी उसे पूरी तरह से पढ़ भी नहीं पाई थी कि तभी दूसरा अंक प्राप्त हुआ. सामग्री, डिजाइन पूरा लुक देख कर यकीन नहीं हुआ कि यह वही पत्रिका है, जिसे मैं पहले से पढ़ती आई हूँ. उत्तरी अमेरिका से एक उत्तम पत्रिका निकालने के लिए बधाई. कहानियाँ बहुत अच्छी लगीं. पुष्पा सक्सेना की 'उसके हिस्से का पुरुष' और सुषम बेदी की 'खुल जा सिमसिम' बहुत पसन्द आईं. दोहे मन को भाए. ग़ज़लें उचित तरीके से डिस्प्ले नहीं हुईं, यह कमी खटकी. एक सुरुचिपूर्ण पत्रिका पढ़वाने के लिए आभारी हूँ.

वन्दना श्रीवास्तव, पैरिस, फ्रांस

किसी ने मुझे ऑस्ट्रेलिया से हिन्दी चेतना की पीडीऍफ़ फॉरवर्ड की. पहली बार इस पत्रिका से मेरा परिचय हुआ. पत्रिका पढ़नी शुरू की तो रुक नहीं पाया. हर तरह से उत्तम. कोई पक्ष कमज़ोर नहीं. यह प्रकाशित भी होती है, इसकी हार्ड कॉपी देखना चाहूँगा, अपना पता मैंने लिख दिया है. आप इसकी मार्किटिंग की ओर ध्यान दें. मैं मार्किटिंग में ही काम करता हूँ. अगर किसी काम आ सका, तो मेरा सौभाग्य होगा. विदेश से एक साहित्यिक कलात्मक पत्रिका को निकालना अपने आप में उपलब्धि है. सम्पादक और उनकी टीम को बहुत-बहुत बधाई.

मानिक विवेक भास्कर

युगांडा, अफ्रीका

हिन्दी चेतना का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ. उसे पढ़ना शुरू किया. पाती में पंकज सुबीर का पत्र पढ़ते ही रुक गई. मैं पत्रकार हूँ और पढ़ने-लिखने में रुचि रखती हूँ. मेरे डैड इसी मीडिया से जुड़े हुए हैं. कई नामी लेखकों को जानती हूँ, वे जब सम्पादक बने तो मैंने उनकी रचनाएँ उनकी अपनी पत्रिकाओं में पढ़ीं. धारावाहिक उपन्यास तक भी. क्यों भाई सुबीर दूसरे सम्पादक और पत्रिकाएँ लाभ लें, अपनी पत्रिका और पाठक बेचारे बने रहें. हाँ हर समय सम्पादक हावी रहे तो बुरा लगाता है. पत्रिका सिर्फ एक की नहीं. पर यहाँ तो सम्पादकीय त्रिपाठी जी लिखते हैं. दुनियाभर के कवि, लेखक हिन्दी चेतना में छाए रहते हैं. सुधा जी तो कभी-कभार ही नज़र आती है. क्या वह सुख भी नहीं मिलेगा. त्रिपाठी जी मेरी विनती है यह गज़ब मत ढाईये. मैं बहुत कम पत्रिकाएँ पढ़ पाती हूँ. हाँ सुधा जी की रचनाएँ जहाँ भी छपती हैं वह पत्रिका ज़रूर पढ़ती हूँ. हिन्दी चेतना को पढ़ती हूँ, यह पत्रिका मजबूर कर रही है मुझे, अपने को पढ़वाने के लिए. दिन-ब-दिन निखरती जा रही है. पर इसमें सुधा जी को नहीं पढ़ पाऊँगी यह जान कर तकलीफ हुई.

एक प्रशंसिका

मधु खेत्रपाल, पंजाब, भारत

मैं ऐसे कई नामी लेखकों को जानती हूँ कि जब वे सम्पादक बने तो उन्होंने अपनी रचनाएँ अपनी ही पत्रिकाओं में प्रकाशित की हैं - धारावाहिक उपन्यास तक. जब दूसरे सम्पादक और पत्रिकाएँ यह लाभ ले सकते हैं तो हिन्दी चेतना ऐसा क्यों नहीं कर सकती? हाँ हर समय सम्पादक हावी रहे तो बुरा लगाता है.

हिन्दी चेतना भारत की पत्रिकाओं के समान्तर खड़ी हो गई है. एक अच्छी, सुन्दर और हर तरह की सामग्री से भरपूर पत्रिका के लिए बधाई. एक सुझाव देना चाहती हूँ कि लेख और कहानियाँ सब पहले के पृष्ठों में ही होती हैं. कविताएँ और ग़ज़लें बाद में. अगर कहानियों के बाद कविताएँ और ग़ज़लें कर दीं जाएँ, बाकी लेख अंत में तो पाठक और उनकी आँखों दोनों के लिए ठीक रहेगा. दिमाग भी भिन्नता से आनंदित हो सकेगा.

सोनू भंडारी, पंजाब, भारत

त्रिपाठी जी, हिन्दी चेतना (अप्रैल-जून) के सम्पादकीय में आपकी वेदना साफ झलक रही है. फिर मैंने कुछ लेख पढ़े. समीर लाल जी का व्यंग्य कमाल का है. ऐसा लगा कि लेखक यू.पी. के किसी गांव में रहता है, कैनेडा में नहीं. हिन्दी चेतना परिवार को मेरी शुभकामनाएँ.

कुँवर नीरज सिंह, भारत

हिन्दी चेतना का अप्रैल 2010 अंक मिला. पत्रिका में साहित्य की सारी विधाओं को समेटने की कला हिन्दी चेतना परिवार बखूबी निभा रहा है. मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करो. पत्रिका के स्तर में भी आशातीत उन्नति हुई है. पत्रिका के आवरण पर विश्व के सारे लोग इसे पढ़ने में तल्लीन हैं, जो बहुत अच्छा लगा, पर एक भी सरदार नहीं देखा - बस वहीं निराशा हुई. ये तो सरदारों के प्रति नाइंसाफी हुई न. बहुत प्यार से.

रेखा मैत्र, अमेरिका

Indo-Canada
Income Tax Services Ltd.

Income Tax / Book keeping Experts
Management Consultants

☎ 905-264-9599

905-264-9587

15 Ayton Crescent, Woodbridge, Ontario L4L 7H8

HOME & AUTO INSURANCE

GOOD RATES FOR
DRIVERS WITH ACCIDENTS
&
CONVICTIONS

EXCELLENT RATES FOR
5-10 STAR DRIVERS
MAY QUALIFY FOR
UPTO
50% DISCOUNT

SUDESH KAMRA
TEL: 416-666-7512

sdshkam@yahoo.ca

विषय : साधना, मौन क्षण अनुभव

नसीहत : चिंता, मन रूपी संपदा का अपव्यय है।

◆ लेखिका : इन्द्रा (धीर) वडेहरा, कैनेडा

प्रश्न : चिंता करने की आदत सी पड़ गई है। जीवन में कोई भारी समस्या भी नहीं फिर भी बिखरी-बिखरी सी रहती हूँ। छोटी-सी बात लेकर सोचती रहती हूँ। कभी वह बुरा है, उसने मेरे साथ ऐसा बुरा क्यों किया ? सच पूछो तो 'लगता है कि बाल की खाल उतारती रहती हूँ।' ऐसा निरर्थक चिंतन, जो सोचना भी नहीं चाहिए उसका व्यर्थ चिंतन स्वभाव में कुछ ऐसे बस गया है कि अब नींद ही नहीं आती। मेरी उम्र केवल 28 वर्ष की है। लोग कहते हैं साधना सीखो। मौन होकर आँखें बंद करके बैठ जाने में मुझे तो कुछ सार नहीं लगता। साधना शिविर मेरे लिए नहीं। आप ही इस विषय में मुझे परामर्श दें।

- अंजली गुप्ता

उत्तर : अपने आप में गुम, अपनी समस्याओं में गुम, भटकन में क्षीण होता हुआ आपका अधीर मन घर लौटने को उत्सुक है। इसे मौन क्षणों के अनुभव की, चेतन में ठहर जाने की, आत्मिक सुख में स्थिर हो जाने की चाहत है और आपके विचार आपको अपने ही आनंद स्त्रोत तक पहुँचने नहीं देते इसलिए आप को नींद नहीं आती। अंजली जी, आपके अपने प्रश्न से यह तो स्पष्ट है कि निरर्थक चिंतन के प्रति तो आप सचेत हैं; लेकिन, आपके अन्दर क्या चल रहा है उसे आप रोक नहीं पा रही हैं।

इस दुविधा का समाधान करने से पहले मैं आपका ध्यान संत एकनाथ द्वारा कही गई एक पौराणिक कथा की ओर ले जाना चाहती हूँ। मनोबल के विषय में सचेत कराते हुए उन्होंने श्रोतागण से कहा :

एक थका-मांदा राही धूप की गर्मी से बचने के लिए एक वृक्ष की छाँव के नीचे आ बैठा। उस वृक्ष की छाँव ऐसी संतोष-जनक थी कि सोचने लगा पीने को जल मिल जाए तो प्यास भी बुझ जाएगी। भगवत् कृपा ऐसी बनी कि जल भी उसे मिल गया, जल पाकर संतुष्ट हो उसे भूख की याद आई और सोचने लगा अगर भोजन भी मिल जाए तो संतोष होगा। भोजन भी मिल गया। कुछ देर पर्यंत रात हो गई और उसे नींद सताने लगी। उसने सोचा अगर नींद का सुख मिल जाए तो सुबह तरोताजा महसूस करूँगा। अब नींद के सुख के लिए एक खाट भी उपस्थित हुई और वह पूरी रात खर्राटे लेता हुआ सुख की गहरी नींद सोया और सुबह उठा तो तरोताजा।

सब सुख पाकर राही अतीव प्रसन्न हुआ और सोचने लगा यह तो अचंभे की बात है कि जो कुछ चाह रहा हूँ वही पा रहा हूँ। यह सोच जब मन में घर कर गई तो सोचने लगा : यह तो कोई माया नगरी है... किसी मायावी का जाल है... शायद कोई मायावी मुझे खा लेने का जाल रचा रहा है..। ऐसा सोचा ही था कि कोई मायावी आया और उसका भक्षण कर गया। संत एकनाथ ने कहानी सुनाते हुए अपने श्रोतागणों से कहा कि वह राही एक कल्प-वृक्ष के नीचे बैठा था। कल्प-वृक्ष का ऐसा प्रभाव है कि उसके नीचे बैठ जो भी कामना करो वह सब कामना पूर्ण कर देता है। कहानी का तथ्य समझाते हुए संत एकनाथ कहने लगे मनुष्य का चिंतन एवं मनोबल एक प्रकार से कल्पवृक्ष ही है।

अंजली जी, बहुत दम है हमारे चिंतन के प्रवाह में। हमारी सोच हमें सुख-चैन की ओर ले जा सकती है और हमारे भय से उपजी हुई हमारे दुष्चिंतन की सेंक कुरेद-कुरेद कर हमें खोखला भी कर सकती है।

पक्षी हमारे सिर पर आ बैठे, इसमें हमारा कोई दोष भले ना भी हो; लेकिन, यदि पक्षी ने हमारे सिर पर घौंसला ही बना लिया है तो उसमें हमारी सम्मति अवश्य होगी। चिंता का भाव किसी के मन में भी आ सकता है लेकिन आपका तो अपना जीवन-रस ही चिंता के छिद्र से बहने लगा है। अकारण चिंतन मन रूपी संपदा का अपव्यय है और जो मन संपत्ति हमारे आत्मिक-सुख का साधन होती है उसी संपदा की फिजूलखर्ची हुई जा रही है और आप उस आत्मिक सुख-संपदा से रिक्त हुए जा रही हैं, इसलिए आपको नींद भी नहीं आती। प्रश्न यह है कि इस व्यर्थ खर्च हो रही मन-संपत्ति को कैसे रोका जाए ताकि आप मानसिक शाँति अनुभव कर पाएँ ?

इस विषय में आपको कोई भी परामर्श देने से पहले मैं आपके लिए एक पाश्चात्य कथा का अनुवाद हिंदी में करती हूँ :

एक दादा ने अपने पोते से बात करते हुए उसे 'दो भेड़ियों' की कथा सुनाई :

'मेरे अन्दर एक घमासान युद्ध चलता रहता है।' दादा जी बोले।

'यह भयंकर लड़ाई दो भेड़ियों के बीच की है।'

एक भेड़िया जो देखने में बदसूरत है, वह तो बड़ा दुष्ट है। वह तो क्रोध, ईर्ष्या, लालच, दु:ख, झूठ, अहं, स्वार्थ, निर्दय, घमंड, कृतघ्न और मित्रहीन यह सब कुछ है।

दूसरा देखने में सुंदर और नेक भी है। वह मित्र, हितैषी, शांत, प्रेमी, आशावादी, शालीन, नम्र, परोपकारी, दयालु, न्यायपूर्ण, शिष्ट, उदार, सत्यवक्ता, कृतज्ञ, दूरदर्शी यह सब है।

यह युद्ध जो मेरे अन्दर चल रहा है, वह तुम्हारे अन्दर भी चल रहा है और दूसरों के अन्दर भी यही युद्ध चल रहा है।

बालक कुछ क्षणों के लिए चुप-चाप चिंतन करता रहा और फिर बोला, 'तो दादा जी, कौन-सा भेड़िया जीतेगा ?'

वृद्ध सज्जन अब गंभीर मुद्रा में बोले, 'जिसे तुम पुष्ट बनाओगे।'

अंजली जी, निकृष्ट विचारों और उत्कृष्ट चिंतन की परस्पर लड़ाई हमारे अन्तर्जगत का देवासुर संग्राम है। इस देवासुर संग्राम से आप अकेली ही नहीं बल्कि हम सब प्राणी लड़ रहे हैं। आपका मुख्य प्रश्न यह है कि इस संग्राम से मुक्ति कैसे पाई जाए? अपने अन्दर शुभ विचारों का सृजन कैसे हो? अपने विचारों को निकृष्ट चिंतन से कैसे बचाया जाए? साधना करने से आपको किसी प्रकार का लाभ होगा या नहीं?

अंजली जी, आपके अंत:करण में शान्ति के अनुभव की कमी है, यह शान्ति का अनुभव हमारे अंत:करण का आहार है और आप का अंत:करण इस आहार से वंचित रहता है। मेरे परामर्श अनुसार अपने आपको इस संकट से बचाने के लिए आपको अपने चिंतन में शान्ति और सद्भाव की श्रेष्टता लानी होगी।

सुझाव–1 : आप अपने जीवन को ही उपयोगी दिशा की ओर ले जाएँ, दूसरों को सुख देकर अपने अन्त:करण में सुख का अनुभव कर अपने जीवन रूपी वृक्ष में रस बहने दें।

सुझाव–2 : आप साधना का आश्रय लें। रही बात 'मौन हो आँखें बँद करके बैठ जाने में आप को तो कुछ सार नहीं लगता।' की तो जागरूकता का क्षण साधना है। साधना एकाग्रता, विचार संयम और मनोनिग्रह के लिए की जाती है। साधना विवेक जागृत करने और चिंतन में श्रेष्ठता लाने के लिए की जाती है।

अंजली जी, मौन-क्षण-सुख शब्दों में व्यक्त करने का विषय नहीं; फिर भी उस सुख और शान्ति की छाया तले हम अपने ही दोषों को अपनी ही दृष्टि से परख लेते हैं। इन दोषों को जान लेना साधना करने का एक बहुत बड़ा हिस्सा है। सत्य तो यह है कि साधना का प्रभाव भी जानने की बात नहीं यह भी अनुभव का क्षेत्र है। फिर भी साधना समय में क्या घटित होता है उसे संक्षेप से शब्दों में उतारने का प्रयत्न करती हूँ।

साधना समय में विशेषत: दो चीजें घटित होती हैं।

1. मनोनिग्रह (विचारों से सम्बन्ध विच्छेद) :

- विचारों से सम्बन्ध विच्छेद अपने चिंतन में श्रेष्ठता लाने का एक सर्वोपरि उत्तम साधन है।
- मौन क्षणों में विराम ले हम मन स्थिर कर लेते हैं। मन स्थिर हो जाने पर आतंरिक शान्ति का अनुभव होने लगता है।
- साधना करते-करते हमारा अपने ही विचारों, भावनाओं, इच्छाओं इत्यादि से सम्बन्ध विच्छेद होने लगता है। अत: हम यह भी अन्वेषण कर लेते हैं कि हमें किन विचारों को सींचना है और किन को उखाड़ फैंकना है।
- किसी भी भाव की मन के अन्दर प्रवेश की मनाही तो आसानी से नहीं हो पाती, यहाँ इरादों का बल शायद काम ना करे। लेकिन साधना समय में मन की शान्ति इतनी गहन होती है कि किन विचारों को आपके पुष्ट करना है और किन को उखाड़ फैंकना है, यहाँ आपके इरादे ही प्रधान होंगे। इस तरह से साधना समय में इस बात की अवहेलना ना करते हुए हम आसानी से ही मन की एक-एक लहर को उपयोगी दिशा की ओर ले जाते हैं।

ऋषि मुनियों का कहना है कि विचारों का अन्धड़ वेग विवेक शक्ति का हरण कर, ना जाने किस भंवर में ले डूबे। इसलिए मानव को चाहिए कि वह अपने विचारों से सम्बंध विच्छेद कर उन्हें एक दृष्टा की भांति निहारे। इस छोटी-सी युक्ति में मानव जीवन का कल्याण छुपा है।

2. मन का ठहराव :

साधना के मौन क्षणों में, जब मन स्थिर हो जाता है तो विचारों और भावनाओं का वेग धीमा पड़ जाता है, अत: मन रूपी संपदा का अपव्यय कम हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप हम मनोबल रूपी संपत्ति सुरक्षित कर पाते हैं।

- मौन क्षण अनुभव बुद्धि निर्मल कर देता है।
- निश्चल मन, निर्मल बुद्धि, शांत हृदय, अंत:करण में एक वरिष्ठ सुख का स्पंदन प्रदान करता है।
- मौन क्षण संपूर्ण अनुभव प्रदत्त है, इसलिए इसका एहसास हमारे अंत:करण की विशुद्ध एवं वरिष्ठ संपत्ति भी है।
- इस उत्कृष्ट आनंद का अनुभव-पूर्ण एहसास हमारे जीवन रूपी वृक्ष की सृजनात्मक अनुभूति है।

मौन की समर्थ के संबंध में एक ऐतिहासिक प्रसंग जानने योग्य है :

सनातन-धर्म का 'महाभारत-ग्रंथ' समाप्त हुआ, इस ग्रंथ का विवरण महर्षि व्यास करते रहे और गणेश जी तन्मयता से उसे लिखने का काम करते रहे, जब सूत जी ने इस रचना का सविस्तार सर्वोत्तम उल्लेख देखा तो वह इससे बहुत प्रभावित हुए, उन्होंने गणेश जी से ग्रंथ की श्लाघा करते हुए पूछा : 'गणेश जी, आपने इस अद्वितीय ग्रंथ का उल्लेख किस दैवी-शक्ति के सहारे किया?' तो गणेश जी का यह उत्तर था : 'मौन की समर्थ ही विशिष्ट है सूत जी।'

जीवन जीते हुए मैंने यह अनुभव किया है और जाना भी है कि मौन-क्षण-सुख अनुभव-पूर्ण विशिष्ट अन्तराल है जिसका विवरण देना कठिन है लेकिन यह जीवन संपदा पूरक सृजनात्मक अनुभव हमारे जीवन को एक अलग ही मोड़ देने की समर्थ रखता है।

चुप हो, जब भी अपने लंबे जीवन पर दृष्टि डालती हूँ और अपने मौन क्षणों की स्मृति को निहारती हूं तो अपने हृदय पर यही संदेश लिखा पाती हूँ -- मौन-क्षण-सुख अनुभव के आगे दुनियाँ भर की संपत्ति फीकी है।

संक्षेप में मैं यह कहना चाहूँगी कि मेरा अपना अनुभव भी इसी बात की गवाही देता है कि जिस व्यक्ति ने अपने विचारों से संबन्ध विच्छेद करने की कला नहीं जानी और जिस व्यक्ति का जीवन मौन क्षण अनुभव से वंचित रहा है उनका जीवन वृक्ष आत्मिक आनंद की सुगंध से वंचित रहा है और संभव है कि वह एक विषैले वृक्ष-सा जीवन ही जी पाया हो। ◆◆◆

Beacon Signs
1985 Inc.

7040 Torbram Rd. Unit # 4, Mississauga, ONT. L4T 3Z4

Specializing In:

Illuminated Signs awning & pylons

Channel & Neon letters

Banners

Architectural signs

VEHICLE GRAPHICS

Engraving

Silk screen

Silk screen

Design Services

Precision CNC cutout plastic, wood & metal letters & logos

Large format full Colour imaging System

SALES – SERVICE - RENTALS

Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel: (905) 678-2859 Fax: (905) 678-1271

E-mail: beaconsigns@bellnet.ca

आखरी किस्त

एक दरवाजा बंद हुआ तो दूसरा खुला

(गतांक से आगे)

डॉ. अंजना संधीर, भारत

सितम्बर से ही हल्की-हल्की ठण्ड शुरू हो गयी थी. धीरे-धीरे कक्षा के लिए तैयार हुई और हौले-हौले चलती पहुंच गयी. मेरे घर से पन्द्रह मिनट कि दूरी पर ही है वो बड़ी कांच कि ऊँची इमारत जिसके आधे हिस्से में काला शीशा लगा है. इस इलाके में, सबसे ऊँची बिल्डिंग यही है जो यूनियन टर्न पाइक सब-वे रेल स्टेशन 'क्यू-10' बीएस स्टेशन को जोड़ती है. जैसे ही स्टेशन से बाहर निकलो, सामने दिखाई पड़ती है. आज 'प्रगति' का दफ्तर, फ्लशिंग में चला गया है लेकिन यह इमारत मुझे रोज़ आते-जाते दिखती है और बहुत कुछ याद दिलाती रहती है. हाँ तो कक्षा का समय ग्यारह बजे था. वहां चाय, काफी की मशीनें एक हाल जैसे कमरे में लगी रहती थीं. अगर कोई जल्दी आ जाता तो चाय, काफी पी लेता. 11 बजे सब कक्षा खंड में चले जाते. जब मैं पहुंची तो काफी औरतें आ चुकी थीं. सब बोली 'गुड मोर्निंग टीचर.' मैंने हंसकर कहा - 'वेरी गुडमोर्निंग, सब कैसे हैं.' फिर उसके बच्चों से मैं कहने लगी, 'जल्दी माँ से बात कर लो फिर दो घंटे के लिए नहीं मिलेंगी.' तभी एक छात्रा पानी का कप ले आई. सबको पता था कि मैं आते ही पहले पानी पीती हूँ. मैंने पानी पिया, घड़ी देखी और कहा, 'चलो भई, ग्यारह बजने वाले हैं, कक्षा खंड में चलते हैं.' तभी कुछ महिलाओं ने कहा, 'टीचर आप यहाँ बैठो न.' मैंने कहा, 'क्यों पढ़ना नहीं है क्या. क्लास का टाइम हो रहा है.' वे बोलीं, 'ठीक है, अभी चलते हैं कक्षा में लेकिन आप यहाँ सोफे पर बैठो न.'

मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा था माजरा क्या है ? मैंने असमंजस में पड़ते हुए कहा, बात क्या है ? पढ़ाई के समय पर सोफा क्यों याद आ रहा है, क्या आज क्लास इस बड़े हॉल में लेने का इरादा है ? तभी दो महिला छात्राओं ने मुझे हाथ से पकड़ा और धीरे से सोफे पर बिठा दिया और बोली - 'टीचर इधर देखो.' सामने बड़े शब्दों में लिखा था - बेबी शावर फॉर अंजना. भारत में जैसे गोद-भराए कि रस्म होती है वैसी ही रस्म अमरीका में भी होती है जिसमें मित्र, रिश्तेदार इकट्ठे होकर, आने वाले बच्चे को शुभकामना देते हैं. माँ को भेंट, गुड विशेज या कार्ड वगैरा देते हैं. बड़ा भव्य आयोजन होता है, पार्टी होती है जिसे 'बेबी शावर' कहते हैं.

जब उस सुंदर बैनर पर लिखे शब्द मैंने पढ़े - 'बेबी शावर फॉर अंजना - आने वाले बच्चे का स्वागत है, उसके लिए शुभकामनायें.' अंग्रेजी में लिखे इन सुंदर शब्दों को पढ़कर मैं खुशी और असमंजस की स्थिति में थी... आँखों से आंसू बहने लगे. अपने पेट पर हाथ रखा और

'टीचर इधर देखो.' सामने बड़े शब्दों में लिखा था - बेबी शावर फॉर अंजना. भारत में जैसे गोद-भराए कि रस्म होती है वैसी ही रस्म अमरीका में भी होती है जिसमें मित्र, रिश्तेदार इकट्ठे होकर, आने वाले बच्चे को शुभकामना देते हैं. माँ को भेंट, गुड विशेज या कार्ड वगैरा देते हैं. बड़ा भव्य आयोजन होता है, पार्टी होती है जिसे 'बेबी शावर' कहते हैं.

रो पड़ी... मेरे बड़े भाई पवन की बहुत याद आई. वो हमेशा मुझे भारत में कहते रहते थे, 'क्या मिलता है तुझे इस समाज सेवा से, क्या देते हैं तुझे ये लोग, जब देखो तब भीड़ लगी रहती है, कमाई तो एक पैसे कि नहीं, अपनी नींद हराम करती रहती है.' मैं तब भी उन्हें कहती थी, दूसरों का काम करके मुझे जो खुशी मिलती है, दुआएं मिलती हैं उनकी कोई कीमत है, पैसा लेकर तो सब काम करते हैं. मैं किसी के लिए करती हूँ, मेरा कोई करेगा, मुझे पता नहीं कौन? लेकिन अपनी तरफ से आपसे हो सके उतना करते रहो.' वे बड़े मजाक के टोन में कहते - 'देखेंगे जब कोई तेरा करेगा!' ये क्षण आज लिखते हुए भी उतने ही जीवंत हैं. वे मेरी ख़ुशी को न तब समझते थे न आज समझ सकते हैं. वे अपनी जगह ठीक, मैं अपने रास्ते! मेरा रास्ता नहीं बदला.

इस संस्था में पढ़ाते हुए मुझे चार महीने हुए हैं लेकिन दक्षिण एशिया के विभिन्न देशों से आई ये विभिन्न उम्र, धर्म, सम्प्रदाय की महिलाएं, इस अनजाने देश में मेरे आने वाले बच्चे के लिए मुझे शुभकामनाएं दे रही हैं. कोई माँ के रूप में है, कोई भाभी के रूप में... ये समाज कि निस्वार्थ सेवा का ही परिणाम है.

मैं सोच रही थी, पति के साथ मंदिर में हम पूजा में अकेले ही थे. आज 25-30 महिलाएं एक साथ पूरी महफिल सजाये खड़ी हैं. मैं उस घड़ी को कभी नहीं भूल सकती हूँ अपने जीवन में. आज भी वो पोस्टर मेरे पास हैं. हमारी दूसरी प्रोग्राम कोआर्डिनेट मिस लिंडा ने सबकी तरफ से एक ग्रीटिंग कार्ड कम्प्यूटर पर बनाया था लिखा था - 'अंजना बेबी ऑन द बोर्ड; एक माँ की गोद में बच्चा दिखाया था और साथ ही दूध की बोतलें डायपर वगैरा एक-एक क्रम से दर्शाए थे और बीच में सब विद्यार्थियों की तरफ से शुभकामनायें लिखी थीं, वह कॉर्ड आज भी मेरे पास है. 'प्रगति' की तरफ से सब ने मिलकर पार्टी का आयोजन किया था. सफेद व नीबू रंग का लेमन केक टेबल पर रखा गया और मुझे बधाई देते हुए मेरे हाथ से केक

इस संस्था में पढ़ाते हुए मुझे चार महीने हुए हैं लेकिन दक्षिण एशिया के विभिन्न देशों से आई ये विभिन्न उम्र, धर्म, सम्प्रदाय की महिलाएं, इस अनजाने देश में मेरे आने वाले बच्चे के लिए मुझे शुभकामनाएं दे रही हैं. कोई माँ के रूप में है, कोई भाभी के रूप में... ये समाज कि निस्वार्थ सेवा का ही परिणाम है.

कटवाया गया. सबने तालियाँ बजाईं, बधाई दी. समोसे, चिप्स, कुकीज़, ज्यूस, चाय, काफी, कोक आदि का इंतजाम था. सबने मिलकर खाया.

यह सरप्राइज़ पार्टी थी. अमरीका में सरप्राइज़ पार्टी का जबर्दस्त चलन है. सारी दुनिया को पता होता है किन्तु उसे ही नहीं, जिसके लिए ऐसी पार्टी आयोजित होती है. सबको इतिल्ला दे दी जाती है कि जिसके लिए पार्टी है, उसे कानों-कान खबर नहीं होनी चाहिए. मुझे संस्था की तरफ से भी 105 डॉलर का चैक भी दिया गया ताकि आने वाले बच्चे के लिए कपड़े या जरूरी जो भी मैं खरीदना चाहूँ खरीद लूँ. पार्टी ने ही मेरे दिल को हिला दिया था. उस पर मेरी सब विद्यार्थियों ने दस-दस डालर, प्रति व्यक्ति इकट्ठे करके मुझे सोने के कानों के टॉप्स भेंट दिए जो मेरे लिए बहुत भारी थे. इतने देशों की इतनी महिलायों की संयुक्त गुरु दक्षिणा इस प्यारे रूप में. इतनी जल्दी मेरी आँखों में आंसू आ गये. मैंने ये लेने से मना किया लेकिन वे नहीं मानी. उनके प्यार ने सजाई उस महफिल में मुझे भुला दिया कि इस देश में मैं अकेली हूँ. लगा यही मेरा परिवार है, यही मेरे लोग हैं. व्यक्ति जहाँ रहता है अगर वहां लोग उसे चाहते हैं तो उसे और क्या चाहिए? सब ने खूब मजे से खाया-पिया फिर हम कक्षा में गये, पढ़ा और सब घर गये.

आज भी याद करती हूँ तो मन आनंद से भर जाता है और एक-एक चेहरा आँखों के आगे छा जाता है. जब मेरी बेटी हुई तो सबने मिलकर खेल खेला कि बच्ची का क्या नाम रखा जाये. लिंडा ने सबको जो गेम खिलाया, आज भी वो पेपर मेरे पास है, जिस पर जिसने जो नाम सुझाया उसका नाम तथा यह नाम रखने का कारण लिखा हुआ है. सब घर पर बेटी को देखने आईं. उस साल बेहद स्नो पड़ी थी. अमरीका में थैंक्स-ग्रीटिंग्स, नवम्बर में आता है और मेरी बेटी, थैंक्स ग्रीटिंग्स वाले हफ्ते में जन्मी तो सब कहने लगे 'थैंक्स ग्रीटिंग' बेटी है. जिस दिन उसका जन्म हुआ 26 नवम्बर को चारों ओर सफेद-सफेद बर्फ ही बर्फ थी. उसी दिन पहली बार मौसम की बर्फ पड़ी थी जिसका लोग यहाँ इंतज़ार करते हैं.

इस तरह अनजान देश में अनजाने लोगों ने मुझे अपन बना लिया. समाज-सेवा का यह भी रूप है 'एक दरवाजा बंद हुआ, तो दूसरा खुला.' ◆◆◆

तारीफ सबको अच्छी लगती है

◆ *आत्माराम शर्मा, भारत*

हिन्दी ब्लॉग की दुनिया में दिन दूना रात चौगुना विस्तार हो रहा है. जानकारों का कहना है कि हिन्दी भाषी संख्या बल पर ब्लॉग जगत में सम्मानजनक स्थान बनायेंगे. तो भी दिल्ली अभी दूर है. हिन्दी के ब्लॉगरों को इंटरनेट की दुनिया के तमाम बरताव सीखने बाकी हैं. प्रतिक्रिया और टिप्पणी पाने की चाह अच्छी बात है और अक्सर ही यह उत्साहवर्द्धक भी होती है, लेकिन इसी के लिए ही लिखा जाने लगे तो समझो लिखे को कूड़े के ढेर में शामिल करते जाना है. हिन्दी के बहुतेरे ब्लॉगर यही कर रहे हैं. सर्वाधिक शोचनीय दशा है हिन्दी कविता की. अनेकों ब्लॉगरों की कविताएं तीसरे दर्जे के बच्चों की तुकबंदियों से कमजोर होती हैं और इन नव-ब्लॉगर-साहित्यकारों को समझाइश भी नहीं दी जा सकती, क्योंकि ये इसका बहुत बुरा मानते हैं और बाकी के ब्लॉगर भी समझाइश देने वाले पर हल्ला बोल देते हैं. बहरहाल वक्त गुजरने के साथ ये दिक्कतें कम होती जायेंगी.

फ़िरदौस ख़ान ने http://firdaus-firdaus.blogspot.com पर विचारोत्तेजक पोस्ट लिखी : क्या हमें मुसलमान कहलाने का हक़ है ? उन्होंने लिखा - हमारा ताल्लुक़इस्लाम से है...और हम मुसलमान हैं... हम ईद मनाते हैं... ईद पर बहुत से लोग हमारे घर आते हैं... जिनमें मुसलमान ही नहीं हिन्दू और ईसाई भी होते हैं... हमारी सहेलियों को भी अम्मी ईदी देती हैं... दिवाली के दिन भी हमारे घर में बहुत रौनक़होती है... इस दिन भी बहुत से हिन्दू और ईसाई परिचित हमारे घर आते हैं... न तो हमें कभी ईद के दिन यह महसूस हुआ कि हम मुसलमान हैं और ईद सिर्फ़ हमारा ही त्यौहार है... और न ही कभी दिवाली के दिन ऐसा महसूस हुआ कि दिवाली सिर्फ़ हिन्दुओं का त्यौहार है... इसी तरह क्रिसमस और गुड फ्राई डे को भी हम और हमारा भाई चर्च जाते हैं... हमें लगता है... सभी त्यौहार खुशियों का पैग़ाम देते हैं... और ख़ुशी में जितने ज़्यादा लोग शामिल हुआ करते हैं, वो उतनी ही बढ़ जाया करती है... हज़रत मुहम्मद ने फ़रमाया है कि... किसी भी मुसलमान के नज़दीक सबसे बड़ा गुनाह किसी के दिल को ठेस पहुंचाना है... फिर क्यों हम किसी और मज़हब के लोगों के दिल को ठेस पहुंचाएं... ? अगर हम ऐसा करते हैं तो क्या हम अपने रसूल और अल्लाह की नाफ़रमानी नहीं कर रहे हैं... ? क्या यह सब

RAI GRANT INSURANCE BROKERS

Business • Life • Auto • Home

ENOCH A. BEMPONG, BA (Econ)

Account Exexutive

140 Renfrew Drive, Suite 230, Markham, ON L3R 6B3

Tel: 905-475-5800 Ext. 283 • 1-800-561-6195 Ext. 283

Fax: 905-475-0447 • ebempong@raigrantinsurance.com

Cell: 905-995-3230 • www.raigrantinsurance.com

सम्पादक
यतेन्द्र वार्ष्णेय

गर्भनाल

garbhanal@ymail.com

GARBHANAL

प्रवासी भारतीयों की मासिक ई-पत्रिका

आपको हिंदी बोलनी आती है? तो फिर हिंदी में ही बात करिये

आप कुछ लिखने चाहते हैं? तो फिर हिंदी में लिखिये

अपनी बोली-बानी में बात करने का मंच है गर्भनाल ई-पत्रिका, जो हर माह नियमित तौर पर आपके ईमेल बॉक्स में पहुँच जाती है. इसे पढ़ें और परिजनों, मित्रों को फॉरवर्ड करें.

GARBHANAL

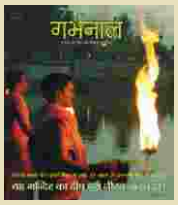

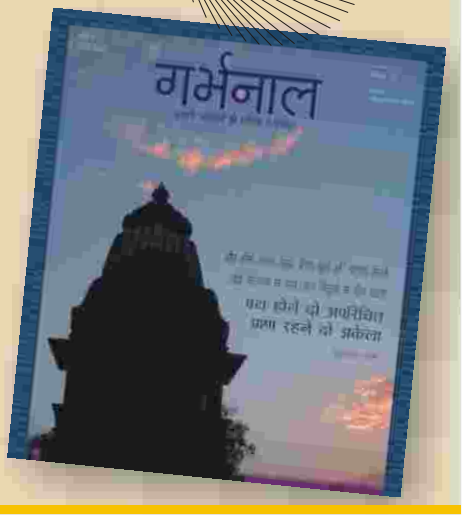

गर्भनाल के पुराने सभी अंक www.garbhanal.com पर उपलब्ध है.

करके भी हमें खुद को मुसलमान कहलाने का हक़रह जाता है... ?

पुण्य प्रसून बाजपेयी http://prasunbajpai.itzmyblog.com ने कानू सान्याल की खुदकुशी पर अच्छी पोस्ट लिखी. वे लिखते हैं कि - 1970 में जब कानू सन्याल को गिरफ्तार किया गया तो वह फौजी पोशाक पहने हुये थे। और चालीस साल बाद नक्सलबाडी के हाथीघिसा गांव के झोपडीनुमा घर में जब उनका शव मिला तो शरीर पर सिर्फ लुंगी और गंजी थी। चालीस साल के इस दौर में कानू सन्याल वामपंथी धारा में मजदूर-किसान के हक को सपनों से तोड़ कर जमीनी सच बनाने की जद्दोजहद ही करते रहे। नये संगठन, नयी पार्टी , चुनावी दांव सब कुछ इसी दौर में कानू सन्याल ने किया। और इस दौर में जो नहीं किया वह 1970 से पहले का सच है। एक ऐसा सच जिसने सत्तर के दशक को मुक्ति-दशक बनाने का सपना खेत खलिहानों से लेकर कोलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज के अहाते तक में पैदा कर दिया। 1977 में जेल से रिहायी के बाद बीते 33 साल में कानू सन्याल को कभी लगा नहीं कि कोई नयी सत्ता किसी के दिमाग में उपज रही है। इसलिये माओवादी संघर्ष को भी कानू सन्याल ने मान्यता नहीं दी और उनकी हिंसा को भी कभी भटकाव तो कभी आंतक का ही प्रतीक माना। लेकिन कानू सन्याल ने सिंगूर-नंदीग्राम के दौर में यह भी जरूर कहा कि कि राज्य अब कहीं ज्यादा क्रूर हो चुके हैं। हालाकि खुद इस दौर में कानू सन्याल राजनीतिक प्रयोग करते रहे और 2003 में जब रेड फ्लैग और यूनिटी के साथ मिलकर सीपीआई एमएल बना रहे थे तो बिहार के एक कामरेड साथी गीत भी गा रहे थे-- 'जब तक मैं देख सकता हूं/ मैं तलाशता रहूंगा / जब तक मैं चल सकता हूं/ आगे बढ़ता रहूंगा / जब तक मैं खड़ा रह सकूंगा/ मैं लड़ता रहूंगा।'

प्रेमचंद को जितनी बार पढ़ा जाए, उतनी बार लगता है कि वे अपने समय से आगे थे. **राजकिशोर** http://blog.chokherbali.in ने प्रेमचंद के रचनात्मक पहलुओं पर प्रकाश डाला है. वे लिखते हैं : प्रेमचंद ने सिर्फ बात बनाने के लिए नहीं कहा था कि साहित्य राजनीति की मशाल है. वे इसमें यकीन भी रखते थे. उनकी और भी ढेर सारी बातें विचारणीय हैं. उदाहरण के लिए, प्रेमचंद विवाह संस्था के विरोधी थे. उनका विश्वास सहजीवन में था. स्त्री-पुरुष संबंधों के विशाल ताने-बाने का उन्होंने तरह-तरह से परीक्षण किया है. इसी परीक्षण के दौरान उन्होंने एक कहानी लिखी थी - मिस पद्मा. कहानी के अनुसार, मिस पद्मा एक सफल वकील थी. उसके पास अपार पैसा था. प्रेमचंद लिखते हैं, 'यों उसके दर्जनों आशिक थे - कई वकील, कई प्रोफेसर, कई रईस। मगर सब-के-सब ऐयाश थे - बेफिक्र, केवल भौंरे की तरह रस लेकर उड़ जानेवाले। ऐसा एक भी न था, जिस पर वह विश्वास कर सकती।' इस कहानी में प्रेमचंद ने सहजीवन पर विवाह की विजय दिखाई है। लेकिन इससे सहजीवनवादियों को निराश नहीं होना चाहिए। इसके माध्यम से प्रेमचंद ने वस्तुत: यह स्पष्ट किया है कि सहजीवन किन स्थितियों में विफल होने को बाध्य है। विवाह की तरह सहजीवन भी एक नैतिक व्यवस्था है। जैसे विवाह के नियम तोड़ने पर वह सफल नहीं हो सकता, उसी तरह सहजीवन की शर्तों के टूटने पर वह भी बिखर जाता है।

'गोदान' प्रेमचंद की सबसे प्रौढ़ रचना है। इसमें भी प्रेमचंद ने सहजीवन का एक उदाहरण पेश किया है। यह जोड़ी मालती और मेहता की है। मालती डाक्टर है। मेहता प्रोफेसर है। दोनों का एक-दूसरे के प्रति अनुराग था। मेहता मालती के घर पर रहने लगा। दोनों के बीच प्रेम का बंधन और। मजबूत हुआ। अब उपासक उपास्य में लीन होना चाहता था। लेकिन मेहता ने जब विवाह का प्रस्ताव रखा, तो मालती ने एकदम से इनकार कर दिया। उसका गंभीर जवाब था -- 'नहीं मेहता, मैं महीनों से इस प्रश्न पर विचार कर रही हूं और अंत में मैंने यह तय किया है कि मित्र बन कर रहना स्त्री-पुरुष बन कर रहने से कहीं सुखकर है। ... अपनी छोटी-सी गृहस्थी बना कर अपनी आत्माओं को छोटे-से पिंजड़े में बंद करके, अपने सुख-दु:ख को अपने ही तक रख कर, क्या हम असीम के निकट पहुंच सकते हैं ? वह तो हमारे मार्ग में बाधा ही डालेगा। ... जिस दिन मन में मोह आसक्त हुआ और हम बंधन में पड़े, उस क्षण हमारा मानवता का क्षेत्र सिकुड़ जाएगा, नई-नई जिम्मेदारियां आ जाएंगी और हमारी शक्ति उन्हीं को पूरा करने में लगेगी। तुम्हारे जैसे विचारवान, प्रतिभावान मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार में बंदी नहीं करना चाहती।' प्रेमचंद ने यह नहीं बताया कि भविष्य में क्या हुआ। हम अनुमान कर सकते हैं कि दोनों के बीच प्रेम का बंधन और मजबूत हुआ होगा तथा दोनों ने एक-दूसरे से बल पाते हुए और एक-दूसरे को बल प्रदान करते हुए आदर्श जीवन बिताया होगा। सहजीवन का यह आदर्श एक रूप है।

फिरदौस खान http://mohallalive.com पर आक्रामक पोस्ट लिखी : 'जान हमने भी गंवायी है वतन की खातिर.' वे लिखते हैं कि बहुसंख्यक हिंदुओं के इस देश में अल्पसंख्यक मुसलमानों की कुर्बानियों की लंबी फेहरिस्त है, जिसकी गिनती बंद कर दी गयी है. लोग याद नहीं करते क्योंकि सियासत ने दोस्ती की जड़ों पर मट्ठा डाल दिया है. कोई कितना ही झुठला ले, लेकिन यह हकीकत है कि हिंदुस्तान के मुसलमानों ने भी देश के लिए अपना खून और पसीना बहाया है. इतिहास मुसलमान शहीदों की कुर्बानियों से भरा पड़ा है. मसलन, बाबर और राणा सांगा की लड़ाई में हसन मेवाती ने राणा की ओर से अपने अनेक सैनिकों के साथ युद्ध में हिस्सा लिया था. झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की दो मुस्लिम सहेलियों मोतीबाई और जूही ने आखिरी सांस तक उनका साथ निभाया था. रानी के तोपची कुंवर गुलाम गोंसाई खान ने झांसी की रक्षा करते हुए अपने प्राणों की आहूति दी थी. गोस्वामी तुलसीदास को रामचरितमानस लिखने की प्रेरणा कृष्णभक्त अब्दुर्रहीम खानखाना से मिली. तुलसीदास रात को मस्जिद में ही सोते थे. शिवाजी को आगरे के किले से कांवड़ के

जरिये कैद से आजाद कराने वाला व्यक्ति भी मुसलमान ही था. गुरु गोबिंद सिंह के गहरे दोस्त सूफी बाबा बदरुद्दीन थे, जिन्होंने अपने बेटों और ७०० शिष्यों की जान गुरु गोबिंद सिंह की रक्षा करने के लिए औरंगजेब के साथ हुए युद्धों में कुर्बान कर दी थी. अमृतसर के स्वर्ण मंदिर की बुनियाद मियां मीर ने रखी थी। इसी तरह गुरु नानकदेव के प्रिय शिष्य व साथी मियां मरदाना थे, जो हमेशा उनके साथ रहा करते थे। रसखान श्रीकृष्ण के अनन्य भक्तों में से एक थे जैसे भिकान, मलिक मोहम्मद जायसी आदि। श्रीकृष्ण के हजारों भजन सूफियों ने ही लिखे, जिनमें भिकान, मलिक मोहम्मद जायसी, अमीर खुसरो, रहीम, हजरत सरमाद, दादू और बाबा फरीद शामिल हैं। *जान हमने भी गंवायी है वतन की खातिर, फूल सिर्फ अपने शहीदों पे चढ़ाते क्यों हो!*

राजेन्द्र मिश्र राज ने http://www.vicharmimansa.com 'जात न पूछो बाबू की' के जरिये भारतीय समाज में व्याप्त बाबू संस्कृति पर मज़ेदार नज़र दौड़ाई. वे लिखते हैं : डेढ़ टन सोना घर में रखने वाला डा. केतन देसाई सच्चे अर्थो में भारत रत्न पाने का हकदार है। उस सोने का बाजार मूल्य 1800 करोड़ है। केतन को भ्रष्टाचार के आरोपों में गिरफ्तार किया गया है. भारत की कमजोर याददाश्त वाली जनता बड़ी आसानी से मधु कोड़ा और तेलगी दोनों को भूल चुकी है। हर्षद मेहता, हितेन दलाल को भी तो सभी भूल चुके हैं। केतन को भी भूल जायेंगे। सच तो यह है कि जात न पूछो बाबू की। डिपार्टमेंट कोई भी क्यों न हो, बाबू एक सरीखे होते हैं। फिर रेलवे में तो कहीं भी जाओ, एक ही शब्द सुनाई देता है 'बड़े बाबू'। फिर चाहे वह बाबू से साहब क्यों न बन चुका हो, संबोधन बड़े बाबू का ही मिलता है। छोटा बाबू कौन है, पता ही नहीं चलता। खलासी से लेकर गैंगमैन तक सभी अपने साहब तक को बड़े बाबू कह जाते हैं। यहां तक कि रेलवे कर्मचारी सेवानिवृत्त हो कर भी आजीवन बड़े बाबू बना रहता है।

इन्फ़ोसिस, टीसीएस, विप्रो और सत्यम जैसी महान भारतीय आईटी कम्पनियों ने भारतीय भाषाओं के उत्थान के लिये अब तक क्या योगदान दिया है? इन कम्पनियों ने सरकार से जमीनें लीं, पानी-बिजली में सबसिडी ली, टैक्स में छूट ली, हार्डवेयर आयात करने के लिये ड्यूटी कम करवाई. इतनी महान कम्पनियों ने क्या आज तक भारत के आम लोगों के लिये एक भी मुफ़्त वितरित करने वाला हिन्दी सॉफ्टवेयर बनाया है? या किसी अन्य भारतीय भाषा को बढ़ावा देने के लिये कुछ किया है?

जनगणना में जाति पूछी जाये या नहीं इस मुद्दे पर **घुघूती बासूती** ने http://ghughutibasuti.blogspot.com ब्लॉग पर लिखा - 'मुझपर भी चढ़ रहा जाति का बुखार!' वे लिखती हैं कि जनगणना में कोई मुझसे मेरी व मेरे परिवार की जाति पूछेगा तो क्या कहेंगी? जिस जाति में मेरा जन्म हुआ, जिससे विवाह किया या कोई जाति नहीं? तीन दशक से कुछ कम वर्ष पहले जब हमसे बिटिया के स्कूल दाखिले के समय जाति का नाम भरने को कहा गया था तो हमने उसे खाली छोड़ दिया था। प्रिन्सिपल ने बुलाया और भरने को कहा तो हमने कहा था कि हम नहीं भर सकते, क्योंकि उसकी कोई जाति नहीं है। सच में जब दो जाति वालों की संतान होती है तो वह जातिविहीन होती है। जाति धर्म तो है नहीं कि आप कोई भी अपना लें। यदि हममें से एक की जाति उसे देनी ही है तो फिर यह जातिवाद कभी खत्म नहीं होगा।

सुरेश चिपलूनकर http://blog.sureshchiplunkar.com ने हिन्दी के विकास भारतीय कंपनियों के योगदान को लेकर महत्वपूर्ण सवाल उठाया : 'हिन्दी हेतु आईटी इंडस्ट्री और इन्फ़ोसिस का क्या योगदान है? वे लिखते हैं - 'बाराहा' के वासु, 'अक्षरमाला' के श्रीनिवास अन्नम, 'कैफ़े-हिन्दी' के मैथिली गुप्त, 'लिनक्स हिन्दीकरण' के महारथी रवि रतलामी, 'गमभन' के ओंकार जोशी, 'प्रभासाक्षी' के बालेन्दु शुक्ल, 'वेबदुनिया' के विनय छजलानी, हिन्दी ब्लॉगिंग और हिन्दी कम्प्यूटिंग को आसान बनाने वाली हस्तियाँ अविनाश चोपड़े, रमण कौल, आलोक कुमार, हरिराम जी, देबाशीष, ई-स्वामी, हिमांशु सिंह, श्रीश शर्मा और इन जैसे कई लोग हैं. ये लोग कौन हैं? क्या करते हैं? कितने लोगों ने इनका नाम सुना है? मैं कहता हूँ, ये लोग 'हिन्दी' भाषा को कम्प्यूटर पर स्थापित करने के महायज्ञ में दिन-रात प्राणपण से आहुति देने में जुटे हुए साधक हैं, मौन साधक। लेकिन इन्फ़ोसिस, टीसीएस, विप्रो और सत्यम जैसी महान भारतीय आईटी कम्पनियों ने भारतीय भाषाओं के उत्थान के लिये अब तक क्या योगदान दिया है? डॉलरों मे कमाने वाली और अपने कर्मचारियों को लाखों के पैकेज देकर समाज में एक असंतुलन पैदा करने वाली इन कम्पनियों ने सरकार से जमीनें लीं, पानी-बिजली में सबसिडी ली, टैक्स में छूट ली, हार्डवेयर आयात करने के लिये ड्यूटी कम करवाई, यहाँ तक कि जब रुपया मजबूत होने लगा और घाटा (?) बढ़ने लगा तो वहाँ भी वित्तमंत्री ने दखल देकर उनका नुकसान होने से उन्हें बचाया। तात्पर्य यही कि इतनी महान कम्पनियों ने क्या आज तक भारत के आम लोगों के लिये एक भी मुफ़्त वितरित करने वाला हिन्दी सॉफ्टवेयर बनाया है? या किसी अन्य भारतीय भाषा को बढ़ावा देने के लिये कुछ किया है? क्या एक आम भारतवासी को यह गर्व नहीं होना चाहिये कि वह जिस सॉफ़्टवेयर पर काम करता है, वह उसी के देश की सबसे बड़ी कम्पनी ने

बनाया है और भारत में रहने वाले लोग बिल गेटस पर निर्भर नहीं हैं ? कब तक हम लोग चोरी के, पायरेटेड, आधे-अधूरे से और वह भी माइक्रोसॉफ़्ट के, सॉफ़्टवेयरों पर काम करते रहेंगे ?

शाहनवाज़ सिद्दीकी http://premras.blogspot.com भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार को गंभीरता से टटोला है. वे अपने पोस्ट 'भ्रष्टाचार की जड़' में लिखते हैं : भ्रष्टाचार हमारे बीच में से शुरू होता है, हम अक्सर अपने आस-पास इसे फलते-फूलते हुए देखते हैं. बल्कि अक्सर स्वयं भी किसी ना किसी रूप में इसका हिस्सा होते हैं. लेकिन हमें यह बुरा तब लगता है जब हम इसके शिकार होते हैं. हम नेताओं, भ्रष्ट अधिकारी इत्यादि को तो कोसते हैं, लेकिन हम स्वयं भी कितने ही झूठ और भ्रष्टाचार में लिप्त रहते हैं ? सबसे पहले तो हमें अपने अंदर के भ्रष्टाचार को समाप्त करना होगा. शुरूआत अपने से और अपनों से हो तभी यह भ्रष्टाचारी दानव समाप्त हो सकता है. भ्रष्ट नेता या अधिकारी कोई एलियन नहीं है, बल्कि हमारे बीच में से ही आते हैं, इस समाज का ही हिस्सा हैं. जब कोई छात्र लाखों रुपये की रिश्वत देकर दाखिला पाता है, उसके बाद फिर से रिश्वत देकर नौकरी मिलती है, तो ऐसा हो नहीं सकता कि वह नौकरी मिलने के बाद भ्रष्टाचार में गोते ना लगाए. अगर कोई शरीफ भी होता है और हालात की वजह से रिश्वत देता है तो शैतान उसको समझाता है कि तू रिश्वत दे रहा है, जब तेरी बारी आएगी तो रिश्वत मत लेना. नौकरी लगने पर सबसे पहले वह सोचता है कि अपने पैसे तो पूरे कर लूँ, फिर धीरे-धीरे उसे आदत ही लग जाती है. क्योंकि एक बार हराम का निवाला अन्दर गया तो ईश्वर का डर अपने-आप बहार आ जाता है.

आखिर में पेश है नामी ब्लॉगर **समीर लाल समीर** http://udantashtari.blogspot.com की कविता. 'मैं कृष्ण होना चाहता हूँ!' *जो दिखा वो मैं नहीं हूँ / बस पाप धोना चाहता हूँ / है मुझे बस आस इतनी / कुछ और होना चाहता हूँ. / जिन्दगी चलती रही है / ख्वाब सी पलती रही है / सब मिला मुझको यहाँ पर / कुछ कमी खलती रही है. / थक गया हूँ ए जिन्दगी / कुछ देर सोना चाहता हूँ... / जब युद्ध हो कुरुक्षेत्र का / मैं कृष्ण होना चाहता हूँ / बस पाप धोना चाहता हूँ /कुछ और होना चाहता हूँ.* ◆◆◆

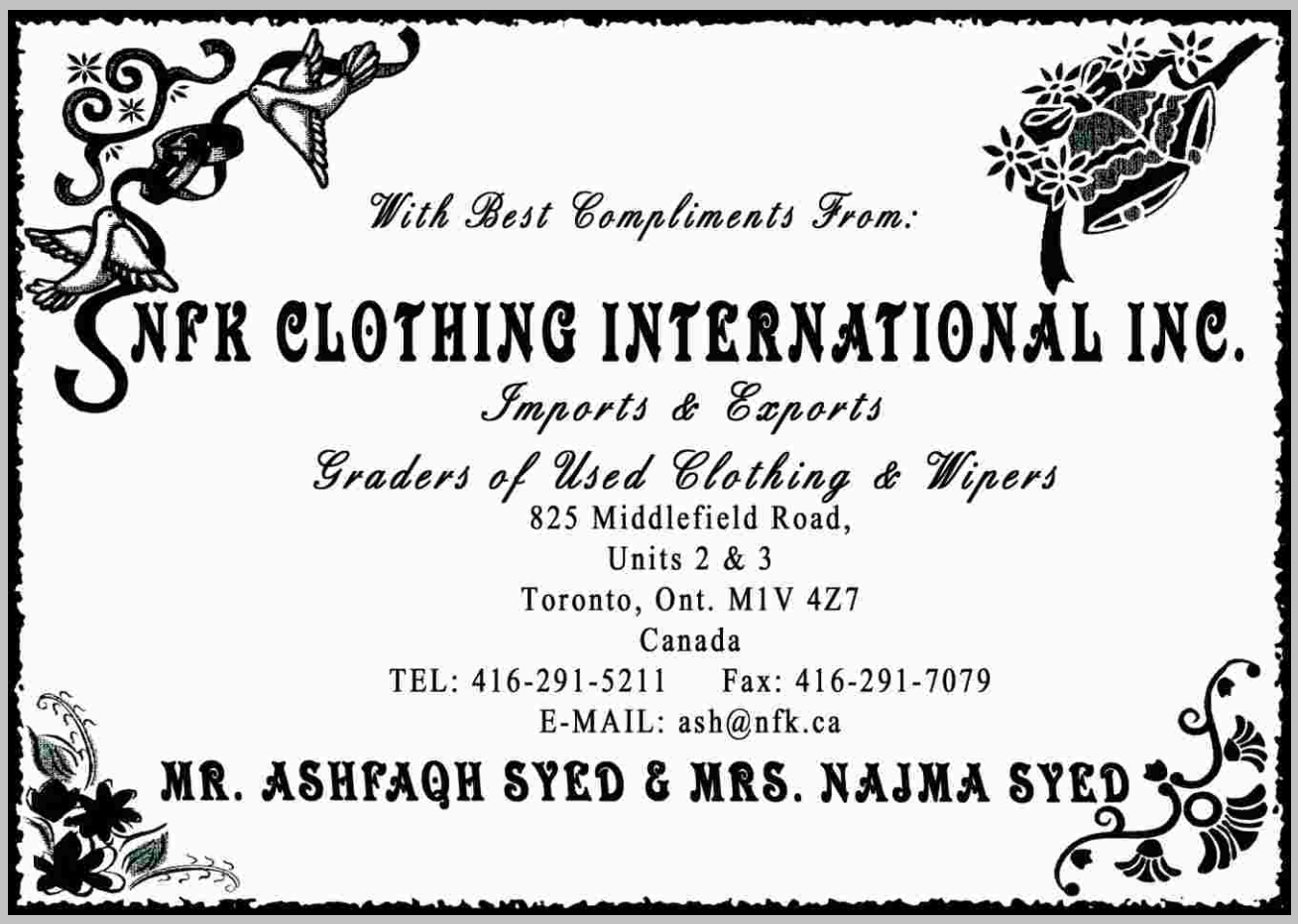

टेलिफ़ोन लाईन

तेजेन्द्र शर्मा

टेलिफ़ोन की घन्टी फिर बज रही है।

अवतार सिंह टेलिफ़ोन की ओर देख रहा है। सोच रहा है कि फ़ोन उठाए या नहीं। आजकल जंक फ़ोन बहुत आने लगे हैं। लगता है जैसे कि पूरी दुनियां के लोगों को बस दो ही काम रह गये हैं मोबाईल फ़ोन ख़रीदना या फिर घर की नई खिड़कियां लगवाना। अवतार सिंह को फ़ोन उठाते हुए कोफ़्त सी होने लगती है। सवाल एक से ही होते हैं, हम आपके इलाके में खिड़कियां लगा रहे हैं। क्या आप डबल ग्लेज़िंग करवाना चाहेंगे? या फिर सर क्या आप मोबाइल फ़ोन इस्तेमाल करते हैं?

मैं फ़ोन इस्तेमाल करता हूं या नहीं, इससे आपको क्या लेना देना है?'

सर हमारे पास एकदम नई स्कीम है। दरअसल ये कोई सेल्स कॉल है ही नहीं। हमारे कम्प्यूटर ने आपका नाम सुझाया है, राईट! आपको फ़ोन एकदम फ्री मिलेगा। राईट! ..यू डू नॉट हैव टु पे ईवन ए पेन्नी फ़ार दि फ़ोन...

यार बिल तो मुझे ही देना पड़ेगा न?

एक दिन तो एक ने कमाल ही कर दिया। अवतार सिंह का नाम सुन कर बोला, अंकल जी मैं दिल्ली तों टोनी बोल रिहा हां। अंकल जी प्लीज़ फ़ोन ले लीजिये न। मेरा टारगेट नहीं हो पा रहा। प्लीज़!

अवतार ने फिर टेलिफ़ोन की तरफ़ देखा है। प्रतीक्षा कर रहा है कि आंसरिंग मशीन चालू हो जाए तो बोलने वाले की आवाज़ सुन कर ही तय करेगा कि फ़ोन उठाना है या नहीं।

किसी ज़माने में पिंकी के फ़ोन की कितनी शिद्दत से प्रतीक्षा होती थी। फिर पिंकी का फ़ोन और उसका फ़ोन एक हो गये थे। पिंकी अपने पिता का घर छोड़ कर अवतार के पास आकर उसकी पत्नी बन कर रहने लगी थी। कुछ साल तो सब ठीक चलता रहा। लेकिन फिर जैसे उनके संबंधों के नीचे से ज़मीन भुरभुरी होती चली गई।

फ़ोन ज़रूर किसी सेल्स वाले का ही होगा। संदेश नहीं छोड़ रहा।

पिंकी भी बिना कोई संदेश छोड़े उसे अकेला छोड़ गई थी। पिंकी के इस तरह उसके जीवन से निकल जाने ने अवतार के व्यक्तित्व पर बहुत से गहरे निशान छोड़े हैं। उसे आज तक समझ ही नहीं आया कि कमी कहां रह गई। क्या

BEST WAY CARPET & RUGS INC.

$50.00 Off All wall to wall Carpet with purchase up to 300 sq. ft.
10% Off all Area Rugs

Free delivery under pad Installation

• Residential • Commercial • Industrial • Motels & Restaurants

Free Shop at Home Service Call: (416) 748-6248

• Broadloom • Area Rugs • Runners • Vinyl & Hardwood • Blinds & Venetian
Custom Rugs • All kind of Vacuums

Interest Free
6 months No Payment
OAC

7003, Steeles Ave. Unit 8
Etobicoke
ON M9W OA2
Ph: 416-748-6248
Fax: 416-748-6249

1 Select Ave, Unit 1
Scarborough
ON M1V 5J3
Ph: 416-321-6248
Fax: 416-321-0929

हालात सचमुच इतने बिगड़ गये थे कि पिंकी को घर छोड़ कर जाना पड़ा ?

पिंकी अवतार को छोड़ कर उसके दोस्त अनवर के साथ भाग गई। सुना है आजकल तो पूरा बुरका पहन कर घर से निकलती है। अवतार हैरान भी है और परेशान भी। पिंकी के भागने से अवतार को बहुत से नुकसान हुए हैं। पहले तो दोस्ती पर से विश्वास उठ गया है। फिर मुसलमानों के विरुद्ध उसके मन में गांठ और पक्की हो गई है। हालांकि कुसूर पिंकी का भी उतना ही था जितना कि अनवर का।

पिंकी मुसलमानों के विरुद्ध कितनी बातें किया करती थी! वह तो बुरका पहनने वाली औरतों को बन्द गोभी तक कहा करती थी! फिर ऐसा क्या हो गया कि वह स्वयं औरत न रह कर बन्द गोभी बनने को तैयार हो गई ?

अनवर जब लंदन आया था तो उसका पहला दोस्त अवतार ही बना था। अनवर मिघयाणे का रहने वाला था। जगह का नाम सुनते ही अवतार की आंखें नम हो आईं थी। उसके अपने माता पिता हमेशा ही झंग की बातें करते थे। झंग और मिघयाणा तो जैसे जुड़वां शहर थे। अनवर की बोली भी अवतार के माता पिता की बोली से कितनी मिलती जुलती थी। अनवर जब बोलता तो अवतार बस सुनता रहता। अनवर हीर बहुत मीठी गाता था।

हीर के मकबरे की बातें करता अनवर अपनी आंखों में पानी ले आता। हीर माई की बातें और तख़्त-हज़ारे का रांझा - दोनों दोस्त ख़्यालों के सागर में नहाते रहते। और फिर एक दिन हो गई थी अवतार की शादी और अनवर को भी घर का खाना मिलने लगा था। वरना तो दोनों दोस्त हाउंसलों के ढाबे-नुमा रेस्टोरेण्टों की कमाई बढ़ाने का काम करते रहते थे। तीनों इकट्ठे फ़िल्में देखने भी जाते थे। आख़री फ़िल्म बार्डर ही देखी थी तीनों ने। और पिंकी घर की सीमा पार कर उस पार चली गई थी।

अब तो संदेसे भी नहीं आते। बस कभी कभी कोई समाचार आ जाता है। जब अवतार का कोई दोस्त सायरा को साउथ हॉल या ईलिंग रोड की मुख्य सड़कों पर ख़रीददारी करते देख

पिंकी मुसलमानों के विरुद्ध कितनी बातें किया करती थी! वह तो बुरका पहनने वाली औरतों को बन्द गोभी तक कहा करती थी! फिर ऐसा क्या हो गया कि वह स्वयं औरत न रह कर बन्द गोभी बनने को तैयार हो गई?

लेता है तो चुटकी लेते हुए अवतार को बताता ज़रूर है। पिंकी को सायरा बानू नाम भी पसन्द था और इस नाम की फ़िल्मी हिरोईन भी सुन्दर लगती थी। उसने कई बार अवतार से कहा भी था, मैं किहा जी, मैं अपना नाम सायरा बानू रख लवां ? किन्ना प्यारा नाम लगदा है! शायद यही नाम रखने के लिये ही वो मुसलमान हो गई!

फ़ोन फिर बजने लगा है। बे-ध्यानी में उसने उठा भी लिया है। फ़ोन श्रीवास्तव जी का है। अवतार समझ गया कि चालीस पैंतालीस मिनट का नुस्ख़ा तो हो गया। श्रीवास्तव जी के साथ उसकी बातचीत कम से कम इतनी तो चलती ही है। श्रीवास्तव जी की पत्नी तो अवतार को अपनी सौतन कह कर बुलाती है। लेकिन प्यार भी बहुत करती हैं। श्रीवास्तव जी उम्र में भी अवतार से बड़े हैं। पांच सात साल तो बड़े होंगे ही। कट्टर मार्क्सवादी हैं। कभी कभी अवतार को भी बोर कर देते हैं। अवतार किसी वाद विवाद को नहीं मानता। इन्सानियत उसका धर्म है और इन्सानियत ही ज़िन्दगी। वो स्वयं न तो गुरुद्वारे अरदास करने जाता है और न ही मंदिर में पूजा करने।

अवतार की मां सिख थीं और पिता हिन्दू। मां ने अवतार को सिख धर्म की सीख दी। लेकिन माता पिता दुर्गा के मंदिर भी उसी श्रद्धा से जाते थे जैसे कि गुरुद्वारे। घर में गुरू नानक और श्री कृष्ण जी की फ़ोटो साथ साथ टंगी रहतीं। अवतार को भगवान कृष्ण के सिर में लगा मोर का पंख बचपन से ही आकर्षित करता था। हालांकि श्रीवास्तव जी के साथ वह नीस्डन के स्वामी नारायण मंदिर भी चला जाता और साउथहॉल के गुरुद्वारे में लंगर भी खा आता।

लेकिन श्रद्धा वाली कोई बात नहीं थी।

श्रीवास्तव जी ने नई ग़ज़ल लिखी है। वे जब-जब कोई नई नज़्म या ग़ज़ल कहते हैं, बेचारे अवतार पर ही ज़ुल्म ढाते हैं! अवतार भी उनकी रचनाओं का आनंद उठाता है। दोनों दोस्त कभी-कभी दोपहर को भोजन भी इकट्ठे कर लेते हैं। श्रीवास्तव जी अवतार के कम्पयूटर को हिन्दी भी सिखाते हैं और गुरमुखी भी। लेकिन कम्पयूटर के सीख लेने के बावजूद अवतार कम्पयूटर के मामले में अपने को अनाड़ी ही पाता है। दोनों को जब कभी कोई नया लतीफ़ा कहीं से सुनने को मिलता है, तो दूसरे के साथ जल्दी से बांट लेते हैं। अवतार का तकिया कलाम रहता है, हां जी, कोल कोई खलोता तां नहीं? ...लो फिर ताज़ा ताज़ा हो जाए। फिर दोनों दोस्त देर तक हंसते रहते।

श्रीवास्तव जी ने कभी भी अवतार से पिंकी के बारे में बातें नहीं की। श्रीवास्तव जी का परिवार अवतार के जीवन में पिंकी के जाने के बाद ही आया। अवतार को अच्छा भी लगता है कि श्रीवास्तव जी ने कभी भी उसकी निजी ज़िन्दगी के बारे में कुछ नहीं पूछा। उसे अपनी आंखों में आंसू बिल्कुल पसन्द नहीं हैं!

फ़ोन रख दिया है। श्रीवास्तव जी की नई नज़्म हैरो शहर पर लिखी गई है। वही सुना रहे थे। अवतार के दिमाग़ में दो पंक्तियां अभी भी गूंज रही थीं, *बाग़ में जिसने बना डाले भवन / तय करो उसकी फिर सज़ा क्या है!* हाउंसलो ही की तरह हैरो की भी शक्ल बदल रही है। बदल तो उसकी अपनी ज़िन्दगी भी बहुत गई है। आज पिंकी बहुत याद आने लगी है। पिंकी और अनवर, भारत और पाकिस्तान, हिन्दू और मुसलमान सभी उसके दिमाग़ को मथ रहे हैं। अचानक ये सब उसे अपने स्कूल में पहुंचा कर खड़ा कर देते हैं।

फ़ोन की घंटी फिर बज उठी है। अवतार ने गिलास में व्हिस्की डाल ली है। वह रोज़ाना शाम को व्हिस्की के दो पैग लेता है। जब कभी यादें सुकून से खिलवाड़ करने लगती हैं, वह दो से तीन तक भी पहुंच जाता है। उसकी प्रिय व्हिस्की है कुछ नहीं। जब पहली बार श्रीवास्तव जी ने इस व्हिस्की के बारे में बताया था तो वह अपनी हैरानी नहीं छिपा सका था। कुछ नहीं! भला इस नाम की भी स्कॉच व्हिस्की हो सकती है? श्रीवास्तव जी ने ही बताया था कि यह व्हिस्की एक भारतीय मूल के व्यक्ति के दिमाग़ की उपज है। आप व्हिस्की पियो तो भी कुछ नहीं पियोगे और अगर नहीं पियोगे, तब तो कुछ पी ही नहीं रहे! ...वैसे अब जीवन में कुछ बचा ही कहां था?

श्रीवास्तव जी की नई नज़्म हैरो शहर पर लिखी गई है। वही सुना रहे थे। अवतार के दिमाग़ में दो पंक्तियां अभी भी गूंज रही थीं, बाग़ में जिसने बना डाले भवन तय करो उसकी फिर सज़ा क्या है! हाउंसलो ही की तरह हैरो की भी शक्ल बदल रही है। बदल तो उसकी अपनी ज़िन्दगी भी बहुत गई है।

जब से अनवर से दोस्ती टूटी है, व्हिस्की ज़रूरत सी बन गयी है। मुश्किल यह है कि जब अनवर की याद सताने लगती है तो व्हिस्की पीकर बिना भोजन किये ही सो जाता है। किन्तु अनवर को भुलाने की तमाम कोशिशें नाकाम ही रहती हैं। क्योंकि अनवर के साथ ही जुड़ी हैं पिंकी की यादें। भला अपनी ज़िन्दगी को कोई कैसे भूल सकता है? आजकल मीट भी नहीं बनाता है। भला अकेले बन्दे के लिये क्या भोजन पकाना? मीट खाना लगभग छूट ही गया है।

स्कूली जीवन में भी मीट कहां खाता था। घर में मां और पिता दोनों ही शाकाहारी थे। अवतार की बहन निम्मो भी शाकाहारी है। अवतार ने ख़ुद भी लंदन आकर ही मीट खाना शुरू किया था। हालांकि जानता था कि इन्सान को मीट नहीं खाना चाहिये। बहुत देर तक शाकाहार पर लेक्चर दे सकता था। लेकिन फिर भी दोस्तों के साथ बैठ कर मीट खा लेता था। हां एक बात तय थी कि न तो वह गाय का मीट खाता और न ही सुअर का गोश्त। ले दे कर चिकन और मछली ही खा पाता था।

स्कूल में भी एक दिन उसके दोस्त ने उसे मछली पेश की थी। मगर उन दिनों कहां खा सकता था मछली। मछली की महक से ही उबकाई महसूस हुई थी। तभी अचानक एक आवाज़ सुनाई दी थी, अरे कहां पंडित जी को मछली खिला रहे हो? तुम सचमुच के सरदार तो हो न? या खाली बस पगड़ी सजा रखी है सिर पर?

यह आवाज़ थी सोफ़िया की। सोफ़िया भी दसवीं में पढ़ रही थी; वो भी विज्ञान की विद्यार्थी थी; फिर भी अवतार से अलग कक्षा में बैठती थी। सोफ़िया पढ़ रही थी बायलॉजी यानि कि मेडिकल साइंस और अवतार पढ़ रहा था मैकेनिकल और ज्योमैट्रिकल ड्राइंग यानि कि उसका लक्ष्य था इन्जीनियर बनना। इसलिये विज्ञान के विद्यार्थी होने के बावजूद दोनों अलग-अलग क्लास में बैठने को मजबूर थे।

किन्तु दोनों की क्लासों के कमरे कुछ इस तरह के कोण बनाते थे कि खिड़की में से दोनों एक दूसरे को निहार सकते थे। और दोनों

यही किया भी करते थे। अवतार ज़रा झेंपू किस्म का लड़का था और सोफ़िया दबंग। सो लड़कों वाले सभी काम सोफ़िया को ही करने पड़ते। यद्यपि अवतार सोफ़िया को प्रेम का संदेश कभी प्रेषित नहीं कर पाया, फिर भी स्कूल में दोनों को लेकर खुसर-फुसर ज़रूर शुरू हो गई थी। ढिंढोरची अरुण माथुर तो एक-एक को बताता फिरता, बेटा देख लियो, सोफ़िया तो थोड़े दिनों में फूला हुआ पेट ले कर चलती दिखाई देगी। यह साला सरदार ऊपर से शरीफ़ बना फिरता है। ख़ूब खेला खाया है। तुम क्या समझते हो छोड़ता होगा ऐसे माल को। गुरू, पेल रहा है आजकल, ज़ोरों शोरों से। और सोफ़िया साली कौन सी कम है, लूट रही है मज़े, सरदार के साथ भी और नसीर सर के साथ भी। ऐश हैं लौण्डी के, दोनों टाईप का मज़ा है गुरू।

अवतार को इतनी ओछी बातें कभी पसन्द नहीं आईं। वह चुप रह जाता। लेकिन सोफ़िया कहां चुप रहने वालों में थी, अबे जा तूं, पेट फुलाऊंगी तो अपना; मज़े लेती हूं तो मैं लेती हूं... तूं क्यों मरा जा रहा है? जानती हूं तेरे बस का तो कुछ है नहीं। तूं तो ढंग से पेशाब ही करले, तो भी हो गई तेरी कमाई।

माथुर की मर्दानगी पर चोट होती तो वह तिलमिला जाता। लेकिन न तो वह स्वयं ही चुप होता और न ही सोफ़िया। जब से पिंकी अनवर के साथ भाग गई है, तब से अवतार को सोफ़िया की याद शिद्दत से सताने लगी है, कहां होगी, क्या करती होगी, कैसा परिवार होगा। उसकी शादी तो हायर सेकण्डरी के बाद ही हो गई थी। अब तो उसके बच्चे भी जवान होंगे।"

अवतार और पिंकी तो अपना परिवार भी शुरू नहीं कर पाये। जब से लंदन आया है अपने हाथ का बना या ढाबे का खाना खाने को अभिशप्त है अवतार। अपने आप को व्यस्त रखने का प्रयास करता है। दोस्तों की एक लम्बी सी फ़ेहरिस्त है। इंटीरियर डेकोरेटर का काम है अवतार का, दूसरों के घर सजाता है, लेकिन अपना घर नहीं बसा पाया।

बेचैन हो उठा है अवतार, उठ कर म्यूज़िक सेंटर के पास जाता है, शिव कुमार शर्मा का सी.डी. लगा देता है। संतूर की लहरियों पर दिमाग़ बेलगाम तैरने लगता है। स्कूल यूनिफ़ॉर्म में सोफ़िया फिर सामने आ खड़ी हुई है। उसके पिता तो राष्ट्रपति भवन में ही काम करते थे। उसका तो घर भी वहीं प्रेसिडेन्टस इस्टेट में था। लंदन आने के बाद एक बार गया भी था वहां। अपना स्कूल देखने के बहाने गया था। अपने स्कूल को भुला पाना भी कौन सा आसान काम था। सोफ़िया जिस क्लास में बैठती थी; जिस कॉरीडोर में चलती थी; जहां पहली बार उसके हाथ से हाथ मिलाया था... वो सब उसकी यादों के धरोहर हैं।

पता चला था कि सोफ़िया के अब्बा रिटायर हो कर जमुना पार किसी कालोनी में फ़्लैट ख़रीद कर वहां चले गये हैं। अब तो असली दिल्ली जमुना पार ही बसती है। हालांकि वहां वाले पुराने लोग आज भी जब जमुना पार करते हैं तो कहते हैं कि दिल्ली जा रहे हैं। अवतार ने अपने स्कूल को एक नया कम्पयूटर दान में दिया। आंखों में गीलापन लिये बस इतना ही कह पाया, सर, इस स्कूल से इतना कुछ पाया है कि यह कर्ज़ तो कभी नहीं उतार सकता।

अब तो प्रिंसिपल भी बदल गये हैं। उसके ज़माने में तो बेदी साहब प्रिंसिपल हुआ करते थे। करीब छः फ़ुट लम्बा कद, भरा हुआ शरीर, देखने में एकदम इटैलियन लगते थे। पूरा स्कूल उनसे डरता भी था। आज प्रिंसिपल के कमरे के बाहर की तख़्ती बता रही है - ओम प्रकाश गुप्ता। तख़्ती हिन्दी में ही लगी है। बेदी साहब की शायद अंग्रेज़ी में थी। वैसे क्या फ़र्क पड़ता है कि तख़्ती किस भाषा में है। प्रिंसिपल तो प्रिंसिपल ही रहेगा। प्रिंसिपल के कमरे के सामने एक खाली स्थान था जहां कुछ फूलों के पौधे लगे थे। उसके बाद दूसरा बराम्दा था। और वहां था कंट्रोल रूम।

उस कंट्रोल रूम के इंचार्ज हुआ करते थे, सर आर.के. सीम। सीम सर से एक बार पूछा भी था कि उनके सरनेम का अर्थ क्या है। वे बस मुस्कुरा कर रह गये थे। सीम सर ड्राइंग भी पढ़ाते थे और कंट्रोल रूम भी देखते थे। अवतार की आवाज़ बहुत सुरीली थी। स्कूल में जब सुबह की प्रार्थना होती थी तो अवतार ही मुख्य गायक की तरह पहले प्रार्थना शुरू करता। बाकी तमाम बच्चे उसके पीछे-पीछे गाते। अवतार जब-जब एसेम्बली के सामने जाकर प्रार्थना शुरू करता, सोफ़िया उसे निहारती। शरमाता हुआ अवतार अपना काम करता जाता। यदि किसी दिन बरसात हो रही होती तो अवतार को कंट्रोल रूम से ही प्रार्थना की शुरूआत करनी होती। उस दिन उसे सोफ़िया की मुस्कुराहट कंट्रोल रूम के बेहिसाब बटनों में ही ढूंढनी पड़ती। सोफ़िया के लिये उस दिन प्रार्थना का कोई अर्थ ही नहीं होता।

इस कंट्रोल रूम में इतने बटन लगे रहते कि इसके भीतर का माहौल खासा रहस्यमयी लगता था। यदि स्कूल की ओर से कोई घोषणा करनी होती, तो कंट्रोल रूम से सीम सर या प्रिंसिपल वो घोषणा कर देते। यदि किसी क्लास में शोर हो रहा होता तो कंट्रोल रूम में उस क्लास की पूरी आवाज़ सुनाई दे जाती और फिर गूंजती सीम सर की आवाज़, क्लास टेंथ-ए, मानीटर कम टू दि कंट्रोल रूम। इतना शोर क्यों हो रहा है। टेंथ-ए का मानीटर तो अवतार ही था। कई बार उसको भी बुलाया जाता था।

वैसे उसकी अपनी क्लास की सुनीता भी उसे चाहने लगी थी। अपने घर मिण्टो रोड लेकर भी गई थी। उस दिन वह घर पर अकेली थी। लेकिन अवतार को समझ नहीं आया कि सुनीता उसे अकेले अपने घर क्यों ले गई, अरे जब ममी पापा घर पर नहीं हैं, तो मुझे आने को क्यों कहा? तुमको तो मैं स्कूल में भी मिल लेता हूं। आज सोचता है तो अपने पर स्वयं ही हंसी आ जाती है। लेकिन अब सुनीता का पता नहीं कि कहां है।

फ़ोन फिर बजा है। अचानक उसे एक शरारत सूझती है। सोचता है कि थोड़ी देर रांग नंबर पर ही बात कर ली जाए। फ़ोन उठाता है, हलो!

हलो, इज़ दैट अवतार सिंह!

आवाज़ की भारतीयता को पहचानते हुए अवतार हिन्दी में ही बोला, जी मैं अवतार सिंह ही बोल रहा हूं।

अवतार, मैं सोफ़िया बोल रहीं हूं दिल्ली से। आवाज़ में एक घबराहट भरी तेज़ी थी, प्लीज़ मेरा नंबर नोट कर लो और मुझे दिल्ली फ़ोन करो। तुम से ज़रूरी बात करनी है।

अवतार ने यह भी नहीं पूछा कि कौन सोफ़िया और अभी बात क्यों नहीं कर पा रही; अवतार क्यों फ़ोन करे। बस काग़ज़ उठाया और फ़ोन नंबर लिखने लगा।

फ़ोन क्लिक से बंद हुआ और अवतार फ़ोन हाथ में लिये ही खड़ा रह गया। कितने हक से सोफ़िया ने आदेश दे दिया था कि फ़ोन करो। और अवतार भी तो कुछ कह नहीं पाया। मन में द्वन्द्व है कि फ़ोन करे या न करे। वह जानता है कि वो फ़ोन करेगा। सोफ़िया का फ़ोन हो, तो वह कैसे वापिस फ़ोन किये बिना रह सकता है।

अवतार ने महसूस किया कि उसके हाथ कांप रहे हैं। उम्र के इस पड़ाव पर भी किसी के व्यक्तित्व का इतना गहरा असर हो सकता है क्या? हो सकता हो या नहीं, किन्तु हो तो रहा है। दिमाग़ सवाल पर सवाल पूछे जा रहा है, आज कल देखने में कैसी लगती होगी? कितन बच्चे होंगे? पति है या मर गया? कहीं मुझ से शादी तो नहीं करना चाहती? क्या मैं किसी मुसलमान औरत से शादी कर सकता हूं... क्या अनवर और पिंकी की घटना के बाद वह किसी मुसलमान के प्रति कोमल भावनाएं महसूस कर सकता है... और अगर शादी हुई तो कैसी होगी? कोर्ट में या फिर निकाह? फिर अपने आप पर कोफ्त होने लगी। क्या बेहूदा बातें सोचने बैठ गया है वो? पता नहीं उसे क्या ज़रूरत आन पड़ी है। कहीं पैसे तो नहीं मांगेगी? क्या फ़र्क पड़ता है अगर मांग भी ले तो। कम से कम उससे बात तो होगी। पैसे देना या न देना तो मुझ पर निर्भर करता है।

अवतार ने एक नम्बर कहीं लिख कर रखा है जहां भारत की टेलिफ़ोन कॉल पांच पैंस प्रति मिनट में हो जाती है। सोचा बात तो लम्बी चलने ही वाली है। वैसे भी पिछले दो तीन वर्षों में टेलिफ़ोन कॉल की दरों में भारी कमी आई है। पांच वर्ष पहले तो भारत फ़ोन करना एक गुनाह जैसा लगता था। एक पाउण्ड बीस पेंस प्रति मिनट। दरें इतनी मंहगी थीं कि बात की चुभन जेब तक पहुंच जाती थी।

स्कूली अवतार ने सोफ़िया का नंबर मिला ही लिया। फ़ोन का नंबर मिलाते-मिलाते पिंकी, अनवर, श्रीवास्तव जी, सुनीता सभी धुंधले पड़ते जा रहे थे। अवतार को अर्जुन की तरह केवल सोफ़िया ही दिखाई दे रही थी। फ़ोन की घन्टी बजते ही सोफ़िया ने फ़ोन उठा लिया, हेलो अवतार! फ़ोन करने में पूरे पांच मिनट लगा दिये! मैं घबरा रही थी कि तुम फ़ोन करोगे या नहीं।

पांच मिनट का इन्तज़ार तुमको इतना लम्बा लगा? यहां तो एक ज़िन्दगी ही निकल गई!

अरे तुम को तो बोलना भी आ गया! फ़ैन्टैस्टिक! मुझे तो डर था कि जो नम्बर मुझे मिला, वो ठीक है या नहीं।

कहां से लिया मेरा नंबर? वैसे कैसी हो? तुम्हारी आवाज़ तो आज भी वैसी ही है।

अरे मेरा क्या पूछते हो। मैं तो कॉलेज तक भी नहीं पहुंच पाई। स्कूल के बाद ही मेरे कज़न से मेरी शादी हो गई थी। मेरे चाचा का ही लड़का था जावेद। दि बास्टर्ड लेफ़्ट मी विद टू किड।

क्या! छोड़ गया तुम्हें! अचानक रोशनी की एक लकीर अवतार की आंखों के सामने झिलमिला उठी। हुआ क्या। उसे हमेशा से शक था कि मेरा किसी हिन्दू लड़के से चक्कर है। वो बस उस लड़के को कोई नाम, कोई चेहरा देने के चक्कर में था। गधे को पता नहीं कि हमने ज़िन्दगी में बस एक ही लड़के को पसन्द किया था... और वो हिन्दू नहीं था... सरदार था!

अरे हिन्दू और सरदार में कोई फ़र्क थोड़े ही होता है। तुम्हारा तो पता नहीं, लेकिन मैं तो तुम्हारे चक्कर में था ही। वैसे चक्कर कोई अच्छा शब्द नहीं है। मैं तुम्हें प्यार करने लगा था।

तुम और प्यार! लल्लू थे तुम, याद नहीं वो बात?

कौन सी बात?

अरे जब तुम प्रिंसिपल के पास मेरी शिकायत लेकर गये थे और उसके सामने घिघिया रहे थे कि सर मुझे एक लड़की छेड़ती है सोफ़िया हक़ तो प्रिंसिपल ने क्या जवाब दिया था?

हां, बेदी सर ज़ोर से हंसे थे और बोले थे, अबे लल्लू, अगर वो छेड़ती है तो तू छिड़। बेवकूफ तुझे ज़रा भी शर्म नहीं आती कि तू एक लड़की की शिकायत कर रहा है? हम इतने बड़े हो गये हैं लेकिन आज तक हमें किसी लड़की ने नहीं छेड़ा। अरे तुम सचमुच बीसवीं सदी के लड़के हो या विक्टोरियन एज के बचे हुए नमूने हो?

तुम को एक बात बताऊं, तुम हमेशा बहुत शरीफ़ लगा करते थे। तुम्हारी पगड़ी इतनी स्टाइलिश बंधी होती थी कि मैं तो फ़िदा ही हो गई थी।

वैसे एक बात बताओ, अगर मैं झेंपू किस्म की चीज़ नहीं होता तो क्या होता। हमारी दोस्ती कहां तक पहुंच जाती?

अरे वो माथुर याद है? जो वो कहता था, बस वही हो जाता। मैं पेट फुलाए स्कूल में आती कि अवतार जी ने मेरे पेट में नया अवतार लिया है! हा हा हा हा... वैसे क्या तुम्हारा कभी जी नहीं चाहा कि आगे बढ़ कर मेरा हाथ पकड़ लो?

जी चाहने से क्या होता है ? हिम्मत भी तो होनी चाहिये। मुझ में तुम्हारे वाली हिम्मत ही कहां थी? तुम्हें वो उषा याद है क्या?

कौन सी उषा?

वही जो स्कूल के बाहर ही रहती थी। आर्ट्स में थी। वो मुकेश का गाना गाया करती थी, जियेंगे मगर मुस्कुरा न सकेंगे, कि अब ज़िन्दगी में मुहब्बत नहीं है?

हां जी, उस रोंदड़ को कौन भूल सकता है। बोलती थी तो लगता था कि अब रोई के तब रोई। उसने छः साल तक बस वो एक ही गाना सुना-सुना कर बोर कर दिया। वैसे अवतार, गाती ठीक थी, मुझे मुस्कुराए हुए तो एक

ज़माना ही बीत गया है।

जानती हो उसने एक दिन मुझे कहा था कि अवतार तुम कोई माडर्न नाम रख लो न! आई विल कॉल यू ऐवी! अवतार बहुत पुराना सा नाम लगता है। तुम में जो सेक्स अपील है, नाम भी वैसा ही होना चाहिये। उसके बाद उसने मुझे हमेशा ऐवी कह कर ही बुलाया। मुझे पता ही नहीं चलता था कि मुझे बुला रही है। वैसे रोंदड़ नहीं थी यार। अच्छी भली लड़की थी। सांवली भी थी। मुझे गोरे रंग के मुकाबले हमेशा सांवला रंग ज़्यादा अट्रेक्ट करता है।

मैंने भी नोट किया था कि तुमने यह बात स्कूल में दो तीन बार दोहराई थी। तुम्हें अपर्णा सेन बहुत सुन्दर लगती थी। गोरी चिट्टी हिरोइनें नहीं। फिर इंगलैण्ड में क्या करते हो? किसी गोरी मेम से चक्कर नहीं चला क्या?

अरे हमारा क्या चक्कर चलना, एक शादी की थी, वो भी संभाली नहीं गई। फिर से कुँवारा बना बैठा हूं।

हां अशोक बख़्शी और नरेश मिले थे। दोनों ने बताया कि तुम उनसे कांटेक्ट रखते हो। उन्होंने ही बताया कि तुम्हारा डिवोर्स हो गया या समथिंग लाईक दैट।

हां बख़्शी और नरेश तो अब भी मिलते हैं। लेकिन बाकी की क्लास से तो कट ही गया। तुम मेरी छोड़ो, अपनी बताओ। तुम्हारे जावेद मियां का क्या हुआ?

होना क्या था यार, बस शक्की दिमाग़ का आदमी था। मेरी गोद में दो लड़कियां डाल कर कहीं भाग गया। आजकल एक प्राईवेट नौकरी कर रही हूं। साला गुज़ारा तक ठीक से नहीं हो पाता। मैंने अपनी बड़ी वाली की तो शादी भी कर दी थी। लेकिन उसकी किस्मत मेरे से भी ज़्यादा ख़राब निकली।

अरे तुम्हारी बेटी की भी शादी हो गई?

शादी भी और विधवा भी। अब क्या बताऊं तुम्हें।

यार यह सुन कर तो लगने लगा है कि मैं भी बूढ़ा होता जा रहा हूं। क्या हम इतने बड़े हो गये हैं कि हमारे बच्चों की शादियां होने

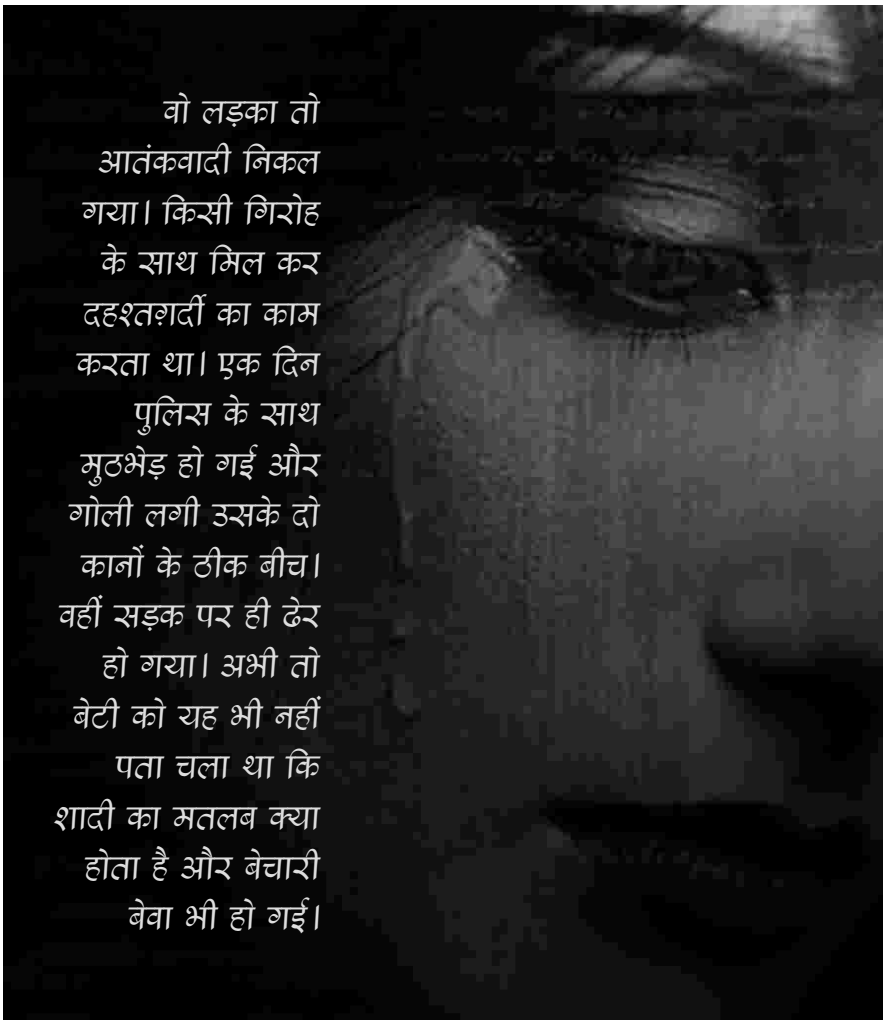

लगें? अपने यार को तो यह एक्सपीरियेंस कभी हुआ ही नहीं।

अवतार मियां तुम भूल रहे हो कि मेरी शादी हायर सेकेण्डरी पास करते ही हो गई थी। अभी तो अट्ठारह की भी नहीं हुई थी। जब शादी होगी, तो सुहागरात भी होगी। और जब वो होती है तो पेट फूल ही जाता है। दो बार फूला और दो बार हवा निकलवा दी। वर्ना चार-चार को लेकर बैठी होती। हमारे मर्द भी तो जाहिल होते हैं। उनके लिये औरत बस इसी काम के लिये होती है। हर साल एक बच्चा बाहर निकाल लो। बेग़ैरत होते हैं सब।

आई एम सॉरी सोफ़ी! मुझे कुछ भी नहीं पता था। वैसे तुम बोलती आज भी उतना ही बिन्दास हो।

जानते हो कितना जी चाहता था कि मुझे कोई सोफ़ी कह कर लिपटा ले अपने साथ। आज पहली बार किसी मर्द ने मुझे यह कह कर बुलाया है। लगता है अचानक नई नवेली दुल्हन बन गई हूं। काश मैं भी कॉलेज और यूनिवर्सिटी जा पाती। मुझमें भी थोड़ी नफ़ासत आ जाती। मुझे तो नौकरी भी वैसी ही मिली हुई है जैसी किसी हायर सेकेण्डरी पास टाइपिस्ट को मिल सकती है। बस टाइपिंग सीख ली थी जो काम आ रही है।

काम क्या करता था जावेद?

जमादार था नामुराद। निकम्मा एक नंबर का। बाप के सिर पर खा रहा था और मुझे भी खिला रहा था। वो भागा तो उसके बाप ने मुझे और बच्चियों को भी निकाल बाहर किया।

वैसे तो मैं तुम्हें कभी भूली ही नहीं थी... पर उन दिनों तुम्हारी बहुत याद आयी। तुम हिन्दू लोग अपने परिवार को कितना प्यार करते हो।

नहीं सोफ़ी ऐसी कोई बात नहीं। अच्छे लोग अच्छे ही होते हैं। चाहे वो हिन्दू हों या फिर मुसलमान या ईसाई। वैसे थोड़ी देर पहले तुमने मुझे सिख कहा था! अब देखो मेरी पत्नी मुझे छोड़ कर अनवर के साथ चली गई। उसे कोई मुसलमान पसन्द आ गया। मैंने सुना है अब तो दोनों के दो बच्चे भी हैं।

या अल्लाह, तुम कैसे मर्द हो जी। अपनी बीवी को जाने दिया? दो झापड़ नहीं लगाए उसे?

सोफ़ी घर बनता है प्यार से, विश्वास से। झापड़ से घर टूटते हैं बनते नहीं।

एक बात बताओ।

पूछो।

तुम हिन्दू लोग क्या अपनी पूरी तन्ख़ाह अपनी बीवी को दे देते हो? क्या घर का खर्चा वो चलाती है? हमारे पड़ोस में दो तीन पहचान वाली हैं। जब वो बात करती हैं तो जलन सी होती है। वो अपने मरद के बारे में कितने हक से बात करती हैं। हमारे मरद तो गिन-गिन कर पैसे निकालते हैं दांत के नीचे से।

मैं औरों की बात तो नहीं कह सकता सोफ़ी, लेकिन हमारे अपने घर में तो सारा खर्चा पहले दादी चलाती थी फिर मां और यहां लंदन में पिंकी। हमें लगता है कि हम कमा कर थक जाते हैं, इसलिये खर्चे का हिसाब बीवी को करने देते हैं। बीवी घर की मालकिन जो होती है।

अल्लाह करे कि हमारे मरद भी तुम लोगों की तरह सोचने लगें। यहां तो मामला एकदम उलट ही होता है।

कुछ बोलो न, तुम चुप क्यों हो गये?

नहीं कुछ नहीं, बस स्कूल के दिनों की बातें याद आ रही थीं। याद है हमने स्कूल में पहली हड़ताल करवाई थी?

मियां हमने मत कहिये। वो हड़ताल तो पूरी तरह से आपके दिमाग़ की उपज थी। और हड़ताल करवाकर ख़ुद मेरठ भाग गये। डरपोक कहीं के!

ऐसी बात नहीं है सोफ़ी, तीन दिन तक तो हम सब इकट्ठे तालकटोरा गार्डन में नारे लगा रहे थे। पहली बार प्रिंसिपल सर से बात करने भी तो मैं ही गया था। वो तो मेरी नानी अचानक हस्पताल में भर्ती हो गई थी। इसलिये मुझे जाना पड़ा। मगर वापिस आकर सारा ज़िम्मा तो मैंने अपने सिर ले लिया था।"

लेकिन मुझे तुम पर बहुत गुस्सा आ रहा था उन दिनों। तुम चाह रहे थे कि हायर सेकेण्डरी के इम्तहान से पहले प्रिपरेटरी लीव मिले और मैं चाह रही थी कि आख़री दिन तक स्कूल चले। इस तरह तुमसे आख़री दिन तक मिल सकती थी।

मैंने इस ऐंगल से कभी सोचा ही नहीं। मैं तो बस लीडर बना हुआ था। फिर माथुर और खन्ना ने मुझे बांस के झाड़ पर चढ़ा दिया था। मुझे भी लगने लगा था कि मैं कोई लीडर बन गया हूं। अब सोचता हूं तो हंसी आती है।

तुम प्रिंसिपल के चहेते थे, इसलिये बच भी गये, वर्ना वो छोड़ता नहीं।

वैसे अपनी फ़ेयरवेल याद है क्या?

अरे उसे कौन भूलना चाहेगा। तुम्हारे साथ लिया गया ज़िन्दगी का एक अकेला चुम्बन। मुझे तो समझ में ही नहीं आ रहा था कि दाढ़ी वाले चेहरे पर किस कहां करूं। ज़बरदस्त करंट लगा था। तुम तो कुछ कर ही नहीं रहे थे। अगर मैं न हिम्मत करती तो यह यादगार पल भी हमारी ज़िन्दगी में कभी न आ पाता।

इसीलिये तो मैं भी तुम्हें कभी नहीं भूल पाया। तुम वो पहली लड़की हो जिसको छूकर मुझे पता चला था कि औरत मर्द से कितनी अलग होती है। दोनों के मिलने से क्या फ़ीलिंग होती है।

और अब कितने तरह की कितनी औरतें तुम्हारे जीवन में आ चुकी हैं?

घबरा सा गया अवतार। वैसे उसे सोफ़िया से ऐसे प्रश्न की आशा तो होनी ही चाहिये थी, अरे कहां सोफ़ी, हमारी ज़िन्दगी में कहां ऐसी बहार है। एक थी वो भी छोड़ कर चली गई।

घबराइये मत, इन्शाअल्लाह जल्दी ही बहारें लौट भी आयेंगी। तुम्हारा कोई बच्चा नहीं हुआ पहली बीवी से?

अरे पहली क्या और आख़री क्या। हमारी ले दे कर एक ही तो बीवी हुई। अभी बच्चे के बारे में सोचा ही नहीं था कि बीवी डोली में बैठ कर पराए घर चली गई। सुनो, दो दो बच्चों के साथ तुम्हें मुश्किल तो बहुत होती होगी। बेटी इतनी कम उम्र में विधवा कैसे हो गयी?

क्या बताऊं दोस्त, अल्लाह की मर्ज़ी के आगे किस का ज़ोर चलता है। जल्दबाज़ी में बेटी की शादी कर दी। अपनी अम्मी की रिश्तेदारी में ही की थी। लड़का श्रीनगर में नौकरी करता था। सोचा कि लड़की को दिल्ली से दूर भेज दूं ताकि मनहूस बाप का साया भी न पड़ सके उसकी ज़िन्दगी पर। लेकिन क्या बताऊं!

बोलो न, क्या हुआ फिर?

वो लड़का तो आतंकवादी निकल गया। किसी गिरोह के साथ मिल कर दहश्तग़र्दी का काम करता था। एक दिन पुलिस के साथ मुठभेड़ हो गई और गोली लगी उसके दो कानों के ठीक बीच। वहीं सड़क पर ही ढेर हो गया। अभी तो बेटी को यह भी नहीं पता चला था कि शादी का मतलब क्या होता है और बेचारी बेवा भी हो गई। तीन महीने ही तो रही अपने ससुराल। पुलिस की दरिंदग़ी से बचाने के लिये मैं उसे वापिस दिल्ली ले आई। अब तो बस अल्लाह पर नज़रें टिकी हैं।

सोफ़ी अगर मैं कोई मदद कर सकूं तो कहो। तुम्हारी बेटी मेरी भी तो कुछ लगती है। उसका दु:ख मेरा भी तो दु:ख है।

अरे अब तुम्हें ही तो सब करना है। मैं तो थक सी गयी हूं। आंसू सोफ़िया के शब्दों के साथ टेलिफ़ोन से बाहर आये जा रहे थे।

रोते-रोते सोफ़िया ने टेलिफ़ोन बन्द कर दिया। अवतार हेलो-हेलो ही करता रह गया।

अब सोफ़िया ने अवतार के दिल-ओ-दिमाग़ पर कब्ज़ा बना लिया था। शाम को शराब के गिलास में जब पानी डाला तो लगा कि

सोफ़िया के बदन पर होली का रंग डाल रहा है। कुछ नहीं में सब कुछ दिखाई देने लगा था।

दिमाग़ में बहुत से सवाल कुलबुलाने लगे। आख़िर सोफ़िया मुझसे चाहती क्या है? क्या मुझ से विवाह करना चाहती है ताकि मैं उसकी बेटी की ज़िम्मेदारी उठा लूं? क्या मुझे इस लफ़ड़े में पड़ना चाहिये? इतने वर्षों में न जाने सोफ़िया कैसी औरत बन गयी होगी? उसका दामाद तो आतंकवादी था। कहीं वो और उसकी बेटी भी? यह क्या बेहूदा बातें सोचना लगा हूँ? लेकिन फिर इतने लम्बे समय के बाद अचानक उसे मेरी याद क्यों आई। बात यही होगी वर्ना ऐसे ही थोड़े मुझे फ़ोन!

कुछ नहीं के पैग की मात्रा में आज अतिरिक्त वृद्धि हो गई थी। तीन के बाद भी रुक नहीं पा रहा था। अवतार लगातार पीता जा रहा है। आज पिंकी उसके सिस्टम में से निकल कर कहीं दूर चली गयी है जबकि अनवर का चेहरा धुंधला होता जा रहा है। बस एक ही चेहरा आंखों के सामने है, किन्तु वो चेहरा भी क्या सचमुच का चेहरा है? जो आवाज़ आज टेलिफ़ोन लाईन पर सुनाई दी थी, उसका चेहरा तो स्कूल की यूनिफ़ॉर्म पहने सोफ़िया का था। आज का चेहरा कहां है?

रात बिना कपड़े बदले ही बिस्तर पर लुढक गया था। साईड टेबल पर शराब का गिलास अभी भी आधा भरा पड़ा था। भारी सिर लिये सुबह उठा। लगभग घिसटता हुआ बाथरूम तक गया। सोफ़िया ने उसकी सपाट ज़िन्दगी में अचानक हलचल मचा दी थी। उसकी बेटी के भविष्य के बारे में चिन्ता होने लगी थी। अगर धर्म आड़े न आ गये होते तो शायद यह लड़की उसकी अपनी बेटी होती। सोच बेलगाम हो कर दौड़े जा रही थी।

फ़ोन की घन्टी फिर बजी। आज दुविधा बढ़ गयी थी। फ़ोन उठाये या नहीं? कहीं सोफ़िया का न हो। अभी निर्णय ले ही नहीं पाया था कि फ़ोन की आंसरिंग मशीन शुरू हो गयी। किसी ने कोई संदेश नहीं छोड़ा। बस सोच रहा है। किसका फ़ोन हो सकता है? क्या यह ठीक रहेगा कि वह सोफ़िया के फ़ोन की प्रतीक्षा करता रहे। सोफ़िया तो रोते-रोते फ़ोन बन्द कर गयी। क्या यह उसका कर्तव्य नहीं बनता कि वह स्वयं आगे बढ़ कर सोफ़िया को फ़ोन करे और उसके आंसू पौंछ दे।

पूरी चौबीस घन्टे बीत गये हैं। अपने आपको संयत करने का प्रयास कर रहा है अवतार। तय नहीं कर पा रहा है कि सोफ़िया के प्रति कैसा रवैया अपनाए। न जाने सोफ़िया इतने लम्बे अर्से में किस-किस तरह के लोगों से मुलाकात करती रही है। फिर एक गन्दी-सी सोच दिल में आती है। साले मुसलमान मेरी बीवी को ले गये हैं, मैं भी किसी मुसलमान लड़की के साथ घर बसा लूं तो हिसाब बराबर हो जायेगा। फिर अपने आपको ही डांट लगाता है। कितनी घटिया बात सोचने लगा है! आज नहीं तो कभी तो प्यार किया था सोफ़िया से। अवतार तो बेगानों के बारे में भी ऐसी बातें नहीं सोचता, तो फिर...? फिर तय करता है। ठीक है, मैं पहले फ़ोन नहीं करूंगा। लेकिन यदि सोफ़िया करेगी तो उसको प्रोपोज़ कर दूंगा।

टेलिफ़ोन लाईन में फिर हलचल हुई। घन्टी बजी। अपनी चिर-परिचित आवाज़ में बोला, हां जी?

वाह जी, लंदन में रहके भी हांजी कहने की आदत अभी भी चल रही है! मान गये भई।

तुम फ़ोन रखो, मैं करता हूं।

कोई बात नहीं अवतार, आज तो कार्ड ख़रीद रखा है।

कोई बात नहीं, कभी इमरजेन्सी में काम आ जायेगा। अभी फ़ोन रखो, मैं करता हूं।

सोफ़िया ने फ़ोन नीचे रखने से पहले कह ही दिया, मेरे सरदारा, तू है बड़ा प्यारा!

अब मुश्किल अवतार की थी, फ़ोन मिलाते हुए उंगलियां कांप रही थीं, दिल धड़क रहा था। फिर भी फ़ोन तो मिलाना ही था। फ़ोन मिला, हां, बोलिये।

कल हम क्या बात कर रहे थे?

तुम कह रही थीं कि सब कुछ मुझे ही करना है। लेकिन तुमने बताया नहीं कि करना क्या है।

बस मेरी पगली बेटी के लिये कुछ कर दो।

लेकिन अगर मैं तुम्हारे लिये कुछ करना चाहूं तो?

अब मेरी ऐसी उम्र कहां रह गयी अवतार। अब तो अपने बच्चों के लिये जी रहे हैं।

हम अपने लिये कभी भी जी पायेंगे क्या?

देखो अवतार अब हालात बहुत ख़राब हो चुके हैं। तुम मेरी बेटी के बारे में सीरियसली सोचो।

तुम बताओ, क्या चाहती हो तुम?

देखो अगर उसको किसी तरह लंदन बुलवा सको और वहां सैटल करवा सको तो उस बिन बाप की बेटी की ज़िन्दगी बन जाएगी। वैसे निगोड़ी है तो बी.ए. सैकण्ड ईयर पास। पूरी करने से पहले ही उसका निकाह जो हो गया था।

बात तो तुम्हारी ठीक है पर यहां ब्रिटेन में आजकल कानून बहुत मुश्किल हो गये हैं। या तो लड़की प्रोफ़ेशनल हो ऊंची पढ़ाई वाली या फिर किसी से शादी करके यहां सैटल हो सकती है। मैं अपने पहचान वालों से बात करके देखता हूं अगर कोई शादी के लिये लड़का मिल जाए तो...

हैलो सोफ़ी, क्या तुम लाईन पर हो? हैलो...!

हां अवतार, सुन रही हूं। तुम मेरी बात सुनो... तुम मेरे दोस्त हो... तुम तो मुझ से प्यार भी करते थे... तुम आजकल हो भी अकेले... भला तुम... तुम ख़ुद ही मेरी बेटी से शादी क्यों नहीं कर लेते? तुम्हारा घर भी बस जायेगा और मेरी बेटी की ज़िन्दगी भी सैटल हो जायेगी। तुम सुन रहे हो...

अवतार को लगा जैसे टेलिफ़ोन लाईन में बहुत घरघराहट सी पैदा हो गई है। उसे सोफ़ी की आवाज़ बिल्कुल सुनाई नहीं दे रही। उसने टेलिफ़ोन बंद कर दिया। ◆◆◆

Far Eastern Books

(Estd. 1976)

http://www.worldwidebookstore.net e-mail: books@febonline.com

Leading Publisher and Distributors

Books, Periodicals & Multi-Media Material In International languages

A single and reliable source for the supply of print & non-print material from the Indian sub-continent at competitive rates, including:

- *Popular titles in English*
- *Fiction & Non fiction in major regional languages such as, Bengali, Gujarati, Hindi, Punjabi, Urdu, Tamil etc.*
- *Single and dual language children books*
- *Educational material for classrooms*
- *Journals & Periodicals*
- *CD & DVD Labels.*

Tel: (905) 477-2900 Toll Free: (800) 291-8886 Fax: (905) 479-2988

250 COCHRENE DRIVE, SUITE 14, MARKHAM, ON. L3R 8E5

R. Kakar Medicine Professional Corporation

Neo Unlimited Medical Assessments (NUMA)

Neo Pharmaceutical Ltd.

Neo EMR Psych

President, Consultant Psychiatrist

Dr. R Kakar M.B.B.S., M.D., L.M.C.C, F.R.C.P.(C)., M.C.S.M.E.

Voted by "Esteemed World Professional Association of Who's Who"

As Member of The Year

2008 - 2009

Address Suite 222, 3447 Kennedy Road

Tel: 416-298-2090 Agincourt, ON. M1V 3S1

416-298-2363 Cell: 647-271-4260 Office Hours

Fax: 416-298-3493 E-Mail: rvkakar@yahoo.ca By Appointment

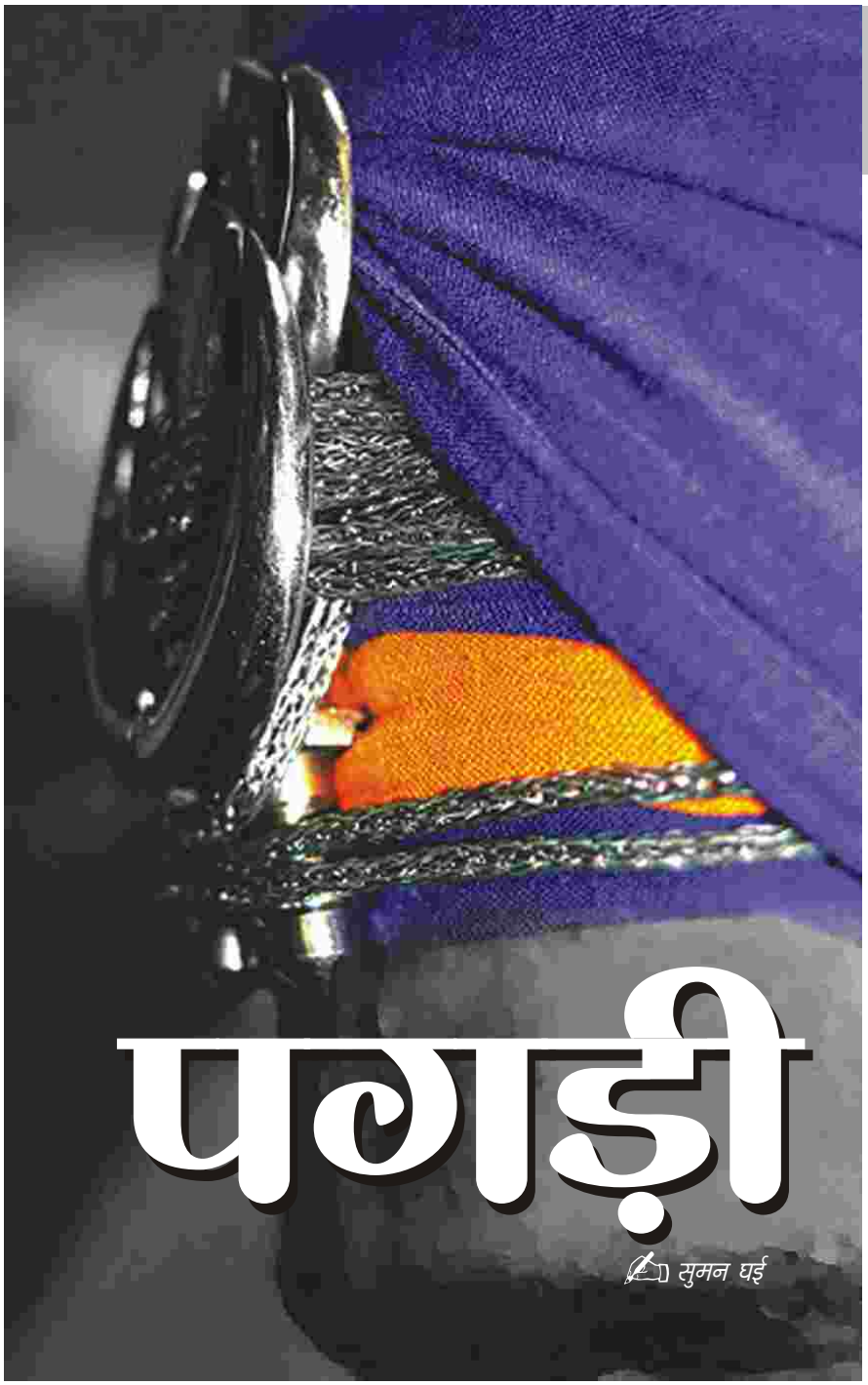

पगड़ी

सुमन घई

हरभजन सिंह बेचैन थे। उनकी बेचैनी उनके कमरे की दीवारों को भेदती हुई पूरे घर में पसर रही थी। यहाँ तक नीचे रसोई में काम कर रही उनकी बहू गुरप्रीत भी उसे महसूस कर सकती थी। गुरप्रीत भी सुबह से सोच रही थी कि ऐसी कौन सी बात है जो कि दारजी को इतना परेशान कर रही है और वह उसे कह नहीं पा रहे हैं। घर में भी तो कुछ ऐसा नहीं घटा जो दारजी को बुरा लगा हो। वैसे भी उनकी आदत तो इतनी अच्छी है कि कोई भी ऊँची-नीची बात हो जाए तो वह बड़ी सहजता से उसे एक तरफ़ कर देते हैं और अपने परिवार की शान्ति में कोई अन्तर नहीं आने देते। आज तो अभी तक नाश्ता करने के लिए भी नीचे नहीं आए, सुबह के दस होने को थे। आमतौर पर तो वह स्वयं, बेटे निर्मल के काम पर जाने के तुरंत बाद नीचे आ कर रसोई में खुद चाय बनाने लगते हैं। कोई दूसरा उनका काम करे उन्हें अच्छा नहीं लगता। लेकिन आज... कहीं तबीयत तो ढीली नहीं उनकी। कल शाम को जब वह बचन अंकल से मिल कर लौटे थे तो कुछ चुप से थे। कहीं उनके साथ तो कुछ कहा-सुनी तो नहीं हो गई? पर... गुरप्रीत ने यह विचार तुरंत की नकार दिया। बचन अंकल तो बहुत ही हँसमुख हैं और वह तो दारजी के, देखा जाए, इकलौते मित्र हैं। नहीं... उनके साथ तो कुछ नहीं हुआ होगा। तो फिर...? गुरप्रीत से और नहीं रहा गया। उसने बनी हुई चाय को एक कप में डाला और नमक अजवायन का पराँठा बनाया और एक ट्रे में डालकर ऊपर ले आई। उसे एक आशा यह भी थी शायद दारजी का एकान्त टूटे तो वह अपनी बेचैनी की वजह बता पाएँ। हरभजन सिंह ने जब गुरप्रीत के कदमों की आवाज़ सीढ़ियों पर सुनी तो अचानक उसे आभास हुआ कि कितना समय हो चुका था। कुछ ग्लानि भी हुई कि उनकी बहू को बेकार में ऊपर आना पड़ रहा है। वह एकदम पलंग से उठे और कमरे के दरवाज़े पर ही गुरप्रीत से ट्रे पकड़ कर कहने लगे -

'बच्ची, नीचे से ही आवाज़ दे दी होती। मैं चला आता, ऐसे ही ऊपर आना पड़ा तुम्हें।'

'नहीं दारजी, इसमें कौन सी परेशानी की बात है। आप नीचे नहीं आए तो सोचा कि पूछूँ आपकी तबीयत तो ठीक है न?'

'नहीं, नहीं ऐसा तो कुछ नहीं है।' कहते-कहते हरभजन सिंह ने अपने आपको को सँभाला। उन्हें लगा कि अगर गुरप्रीत ने उसकी बेचैनी की वजह पूछ ली तो वह बता नहीं पाएँगे और झूठ वह बोल नहीं सकते थे। बात को बदलने के लिए उन्होंने कहा-

'बेटी, ट्रे को मेज़ पर रख दो मैं अभी हाथ धो लूँ।' कहते-कहते वह कमरे से निकल कर बाथरूम की और बढ़ गए। गुरप्रीत भी समझ

गई कि बात इससे आगे नहीं बढ़ेगी और वह चुपचाप नीचे आकर फिर रसोई में व्यस्त हो गई। कम से कम दारजी की सेहत तो ठीक थी।

हाथ-मुँह धोकर जब तक हरभजन कमरे में लौटे तब तक गुरप्रीत नीचे जा चुकी थी। नाश्ता करते हुए कल बचन सिंह के साथ हुई बातचीत और उसकी हरकतें उनके दिमाग़ में घूमने लगीं। बचन सिंह ने जो कल उनसे कहा क्या वह तर्क-संगत है? घर-परिवार में रहने वाला बुज़ुर्ग क्या वह सब कुछ कर सकता है; चाहे उसका जितना भी जी करे? क्या इससे कोई मर्यादा भंग नहीं होती? दूसरी ओर उनके मन से एक दबी सी आवाज़ भी उठ रही थी 'इसमें हर्ज़ ही क्या है? आखिर वह भी इंसान हैं, कोई देवता तो नहीं! उम्र बढ़ रही है तो क्या.. इसकी दलीलें भी तो बचन ने दीं थी। कोई गलत तो नहीं कह रहा था वह..।' फिर दूसरी आवाज़ उठी.. 'अपनी सफेद दाढ़ी तो देख। इसके खिंचवाने का इरादा है क्या...?' अचानक हरभजन सिंह कह उठे - 'नहीं, नहीं.. मैं ऐसा कुछ भी नहीं करूँगा।' अपने निर्णय पर उसने चैन की एक साँस ली और नाश्ता खाने में व्यस्त हो गए। नाश्ता समाप्त होने पर उन्होंने सोचा कि इससे पहले गुरप्रीत फिर ऊपर ट्रे उठाने आ जाए, स्वय नीचे जाना ही ठीक होगा।

नीचे जाकर ट्रे उन्होंने चुपचाप रसोई के मेज़ पर रखी और गुरप्रीत ने बिना नज़र उठाए ही देखा कि दारजी समाचार पत्र उठा कर बिना उसे कुछ कहे बाहर डेक पर जा बैठे हैं। यह उनकी रोज़ की दिनचर्या थी पर आज की तरह कभी गुरप्रीत से बिना बात किए बाहर नहीं जाते थे। गुरप्रीत हैरान थी कि आज दारजी उससे नज़र मिलाने से भी क्यों बच रहे थे।

हरभजन ने केवल दिखाने भर के लिए समाचार पत्र खोला हुआ था। वास्तव में अभी भी अपनी कल की बचन से हुई भेंट के बारे में ही सोच रहे थे। वह दिन में सैर करते हुए कई बार अपने मित्र बचन सिंह से मिलने चले जाते थे। बचन सिंह एक कार गेराज में कार मकैनिक था। कल भी और दिनों की तरह हरभजन जब कार गैराज पर पहुँचे तो बचन सिंह एक कार की ब्रेक ठीक कर रहा था। कार हाइड्रॉलिक लिफ़्ट पर ऊपर उठाई हुई थी और बचन सिंह कार की दूसरी ओर काम करते हुए मस्ती भरे गाने गा रहा था। उसे हरभजन के वहाँ पहुँचने का अभी आभास नहीं हुआ था। हरभजन कुछ समय तो गाना सुनते हुए मुस्कुराते रहे। जब उन्हें लगा कि बचन बहुत मस्ती में है तो उन्होंने ही उसे पुकारते हुए कहा-

'बचन बहुत मस्ती में लग रहा आज, ऐसा क्या हो गया जो इतना खुश है?'

'अरे भजन! मुझे तो पता ही नहीं चला तू कब आया', उसने कार के नीचे से झाँकते हुए कहा और फिर से अपने काम में व्यस्त हो गया। हरभजन सिंह ने हमेशा की तरह के कुर्सी को सरकाया और उस पर बैठ कर बचन के काम के निपटने की प्रतीक्षा करने लगे। अभी एक-दो मिनट ही बीते थे कि गैराज के मालिक ने हरभजन सिंह के हाथ में एक कॉफी का कप थमाते हुए कहा, 'अंकल जी न जाने क्या हुआ है बचन अंकल को; आज सुबह से ही ऐसी मस्ती चल रही है।'

कार-गैराज का मालिक अपने गुरद्वारे की संगत का ही सदस्य था और कभी-कभी बुज़ुर्गों की सहायता के लिए उन्हें नौकरी भी दे देता था। बचन सिंह की नौकरी का भी यही कारण था। उसके लिए काम के नियम बहुत ढीले थे। दोनों ही खुश थे। बचन सिंह के हाथ में चार पैसे आते और उसे लगता कि उसका जीवन आज भी सार्थक है और मालिक को लगता कि वह समाज के बड़े-बूढ़ों की पीड़ा को कुछ कम कर रहा है।

हरभजन के कॉफी के पहला घूँट भरा ही था कि बचन का गाना फिर शुरू हो चुका था। हरभजन ने एक बार फिर बचन को पुकारते हुए कहा -

'बस कर बचन बहुत हो गया और बेसुरा नहीं सुन पाऊँगा। मुझे यहाँ से भगाने का इरादा है क्या?'

बचन ने फिर कार से नीचे से झाँकते हुए कहा -

'सच मान भजन मैं तो कल लाहौर देख आया।'

हरभजन को उसकी बात समझ में नहीं आई 'कैसी अटपटी बात कर रहा है बचन, कैनेडा में तू लाहौर देख आया?'

बचन सिंह ने इस बार बिना नीचे से झाँके ही कहा 'भजन याद है बचपन में बुज़ुर्ग कहा करते थे कि जिसने लाहौर नहीं देखा वह जन्मा ही नहीं।'

'हाँ, वह तो सुना था, पर तेरी बात का तुक समझ नहीं आ रहा।'

'समझ जाएगा प्यारे जब तू भी देखेगा जो मैंने देखा है - सब समझ जाएगा', बचन फिर से चहका।

'क्या देख लिया तूने जो इस उमर में आकर फिर से जन्मा है?' हरभजन सिंह को समझ नहीं आ रहा था कि बचन की बातों पर वह झल्लाएँ या हँसें।

इस बार बचन एक कपड़े से अपने ग्रीस से सने हाथों को पोंछता हुआ हरभजन के पास आया। उसके चेहरे पर शरारत भरी कुटिल सी मुस्कान बिखरी और उसने हरभजन की ओर झुकते हुए एक आँख दबाते हुए कहा 'कल ज़िन्दा डाँस देख कर आया हूँ प्यारे!'

'बचन तेरी बातें मेरी समझ से तो बाहर हैं, क्या हो गया है तुझे आज; पहेलियों में बातें कर रहा है।'

'यार तू न जाने कैसा मास्टर रहा होगा... कोई बात तुझे एक बार में समझ ही नहीं आती', बचन कुछ झल्ला सा गया। उसने ग्रीस से लिपटे कपड़े को कोने में पड़े ड्रम में दूर से ही फेंका। लौटकर हरभजन की ओर देखने तक उसकी झल्लाहट समाप्त हो चुकी थी। उसने एक रहस्यमयी मुस्कान हरभजन की ओर फेंकी और वह दो कदम बढ़कर हाइड्रॉलिक लिफ़्ट के खंभे से लिपट कर कमर मटका मटका कर नाचने का प्रयत्न करने लगा। उसने पलट कर हरभजन से कहा 'ऐसा डाँस!'

भारी शरीर और खुली सफेद दाढ़ी वाले व्यक्ति को इस तरह से कमर मटकाते हुए देख, हरभजन की हँसी नहीं रुक रही थी। एक दो पल के बाद जब हरभजन सँभले तो उन्होंने फिर से एक बार अपनी नासमझी प्रकट की। बचन को लगा कि इस सीधे-सादे हरभजन को दीन-

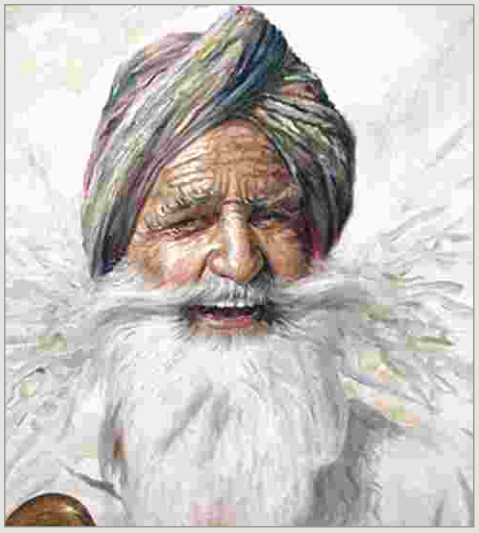

भारी शरीर और खुली सफेद दाढ़ी वाले व्यक्ति को इस तरह से कमर मटकाते हुए देख, हरभजन की हँसी नहीं रुक रही थी। एक दो पल के बाद जब हरभजन सँभले तो उन्होंने फिर से एक बार अपनी नासमझी प्रकट की। बचन को लगा कि इस सीधे-सादे हरभजन को दीन-दुनिया का कुछ पता ही नहीं है।

दुनिया का कुछ पता ही नहीं है। इसे तो सब कुछ स्पष्ट ही बताना पड़ेगा। उसने एक और कुर्सी को हरभजन के पास सरकाई और आगे झुकते हुए धीमे स्वर में पूछा, 'भजन कभी तूने स्ट्रिप टीज़ के बारे में सुना है।'

अब हरभजन को बचन की हरकतें कुछ-कुछ समझ आने लगीं थीं। उन्होंने ने भी उतनी धीमी आवाज़ में उत्तर दिया, 'हाँ, पर... तू...!'

'अब समझा तू...', बचन की बाँछे खिल गईं। उसने फिर उसी रहस्यमय ढंग बात आगे बढ़ाई 'तू जानता है न अगली सड़क पर जो क्लब है, कल दोपहर उसी में गया था।'

हरभजन लगभग भौंचक्के से बचन के चेहरे को देख रहे थे। मन में सैकड़ों प्रश्न उठ रहे थे। बचन ने भी उनके चेहरे को पढ़ा - 'हैरान न हो भजन, यह तो यहाँ आम बात है। सभी जाते हैं, सभी देखते हैं, सभी आनन्द उठाते हैं... ऐसी कोई भी अजीब बात नहीं जो मैं भी देख आया। सच कहता हूँ भजन, तू भी हो आ एक बार।'

हरभजन की ज़ुबान पर तो ताला सा लगा हुआ था। बचन ने अपनी बात को जारी रखा- 'देख भजन, हम दोनों ने अपनी जवानी तो अपने मुल्क में ही बिता दी। अब इस उमर में कम से कम आँखों से तो मजा उठा ही सकते हैं', कहते-कहते बचन के चेहरे पर कुटिल मुस्कान फिर से खेल रही थी।

'यह क्या किया तूने बचन? इस उमर में ऐसी बात? कोई देख सुन ले तो सारी उमर की कमाई इज़्ज़त एक पल में मिट्टी में मिल जाए.. क्या सोचा था तूने?'

'हाँ, बहुत दिनों तक सोचा था', बचन सिंह कुछ गम्भीर हो गया था 'देख भजन तू और मैं एक ही काम के लिए यहाँ पर बुलाए गए थे। तेरे बेटे और मेरे बेटे ने अपने बच्चों को पालने के लिए हमें बुलाया था। तू खुशकिस्मत निकला कि दो फूल-सी पोतियों के बड़ा होने के बाद तेरे बेटे और बहू ने तुझे नहीं दुत्कारा। पर मुझे तो मेरे अपने बेटे ने ही....' कहते-कहते बचन की आवाज़ काँपने लगी। उसने आगे झुक कर हरभजन की कुर्सी के हत्थे का सहारा लिया, अपने आपको सँभाला, '...घर से निकाल दिया। भला हो इस... इस जवान का जिसने गुरद्वारे में मेरी कहानी सुनी और पनाह दी। जुग-जुग जिए मेरा यह पुत्तर!' उसकी आँखें डबडबा रही थीं और वह ऑफ़िस में काम करते हुए मालिक की ओर देख रहा था।

'वही तो कह रहा हूँ बचन। जो तेरे साथ हुआ, बुरा हुआ। पर अब तो सोच... तेरी यह हरकत किसी को यहाँ या गुरद्वारे में पता चली तो?'

'चलने दे। अब ज़िन्दगी के और कितने दिन बाकी हैं। अब तो सोच लिया है भजन कि अब जितना समय बाकी बचा है; दिल भर के जियूँगा, गोरों की तरह!' कहते-कहते लगा कि बचन सिंह दो पल पहले वाली संजीदगी से कोसों दूर चला गया है। अलमस्त..., बेपरवाह... वही शरारत भरी मुस्कुराहट होंठों पर फिर खेलने लगी। पीछे को होकर उसने अपनी पीठ कुर्सी से कुछ इस तरह टिकाई जैसे कोई महाराजा अपने सिंहासन पर बैठा हो। अपनी दाहिनी मूँछ को ऐंठते हुए उसने हरभजन से प्रश्न किया-

'बता हरभजन, भाभी को गुज़रे कितने बरस बीत गए?'

'पाँच साल', हरभजन का संक्षिप्त उत्तर दिया।

'मेरी घरवाली को गए भी तकरीबन इतनी ही देर हो चुकी है और जानता है कि हम कर क्या रहे हैं?' उसकी नज़रें गहराई से हरभजन के चेहरे को टटोल रही थीं।

'तेरी बात नहीं समझा मैं', हरभजन ने कहा। उसका उत्तर सुन कर बचन ज़ोर से हँसा।

'कहा था न, तू रहा वही मास्टर का मास्टर! सारी उमर एक ही पाठ पढ़ता और पढ़ाता रहा है। कभी अपनी किताब से बाहर भी झाँक कर देख, व्यंग्य में शुरू की हुई बात लगभग आवेश की सीमा तक पहुँच रही थी, दुनिया क्या कहेगी इसी डर से रँडुए बन कर घूम रहे हैं हम दोनों। क्या हमें पूरी ज़िन्दगी जीने का कोई हक़नहीं, बचन के स्वर में क्रोध और बेकार होते जीवन की कुँठा टपक रही थी। हरभजन अवाक! बचन को देख रहे थे क्या हो गया था बचन को आज। एक ही दिन में उस स्ट्रिप-बार में क्या देख आया था वो कि उसके सभी आदर्श बदलने लगे थे। बचन ने फिर से बात का छोर पकड़ा - हम दोनों की जगह कोई गोरे होते तो अब तक कब से शादी कर चुके होते। अगर शादी नहीं तो कम से कम गर्ल-फ्रेंड तो ज़रूर होती। एक बात तो है उनमें कि दुनिया के डर से जीना नहीं छोड़ जाते वो। और हमारे यहाँ पति-पत्नी में एक मरा तो दूसरा ज़िन्दा लाश समझ लिया जाता है। कहते हैं कि बड़ी तरक्की कर ली है हमने... ख़ाक की है,

बचन का गुस्सा फिर बढ़ रहा था। हरभजन ने बात का रुख मोड़ने के लिए कहा।

'यार सुन, इस उमर में शादी कर भी लें तो क्या ? क्या करेंगे हम अपनी बीवियों का ?'

'गोरे क्या करते हैं... ? कभी उस नीली गोली के बारे में सुना है... हम भी प्यारे फिर से जवान हो जाएँगे', बचन सिंह फिर से पुराने रंग में लौट आया था। वह अपनी कुर्सी से उठा और उसने मेज़ से एक औजार उठाते हुए कहा 'भजन मेरी बात मान, एक बार देख आ तू भी। सच कहता हूँ फिर से जीना सीख जाएगा।'

'रहने दे मेरे भाई जैसा भी हूँ ठीक हूँ', हरभजन ने बात को टाला।

'फिर वही ज़िद्द। सोचना, अगर मन बदल जाए तो कहता हूँ कि दिन में दो बजे के करीब जाना। बाद में अपने जवान भी वहाँ पहुँचने लगते हैं। पहचाना गया तो तेरी मुसीबत हो जाएगी, मेरा तो न कोई आगे है और न पीछे, मेरी तो भली-चलाई', कहते हुए बचन एक फिर से कार के दूसरी तरफ़ जा कर आँखों से ओझल हो गया।

हरभजन कुछ समय तक वहीं बैठे बचन की दलीलों को सोचते रहे। उन्होंने फिर घड़ी देखी, घर लौटने का समय हो रहा था। वह उठे और उन्होंने बचन की और मुस्कुराते हुए देखा और बाहर की ओर चल दिए। पीछे से बचन ने आवाज़ दी 'भजन कल देख कर आना फिर उन गोरियों की बातें करेंगे!'

उसकी खी-खी की हँसी हरभजन ने भी सुनी पर वह पलटे नहीं। बस चलते गए अपने घर की ओर। जो बीज बचन ने उनके ख़्यालों में रोपा था वह अंकुरित होने का प्रयत्न कर रहा था। बचन का प्रश्न बार-बार उनके अन्तर्मन में कौंध रहा था 'कितनी देर हुई है भाभी को गुज़रे.... क्या हमें पूरी ज़िन्दगी जीने का कोई हक़ नहीं ?' सच में हरभजन स्वयं यह प्रश्न कई बार एकान्त में कर चुका था। दिन तो दैनिक जीवन की व्यस्तता में निकल जाता था। जीवन का एकाकीपन रात के सन्नाटे में पहाड़-सा बोझ बन जाता था। उन्हें याद है कि उसके गुज़र जाने के बाद बरसों बिस्तर पर हरभजन एक ही बाजू सोते थे। रात को कई बार अनजाने में जब उनका हाथ साथ के खाली तकिए पर लगता तो जो हूक उनके मन में उभरती थी; वह उनकी नींद उस रात के लिए उड़ा देती थी। इस खालीपन का समाधान न जाने उन्होंने कितनी बार रात के अन्धेरे में टटोला था... पर यह अन्धेरा तो असीम था; उसमें कोई राह नहीं दिखाई देती थी। इस उमर में रात को साथी की आवश्यकता तो केवल जीवन की पूर्णता का आभास देती है। चाहे रात को कम्बल के लिए खींचातानी हो या खर्राटों की शिकवा-शिकायत 'हरभजन कितनी कमी महसूस करते थे केवल इस छोटे से आभास के लिए।' बचन की बातें उन्हें तर्कसंगत लगने लगी थीं।

घर लौटने के बाद भी हरभजन यही प्रश्नों के उत्तर अपने अन्दर ढूँढते रहे थे। जिस मर्यादा को निभाने के लिए वह एकाकी जीवन जी रहे थे, वही मर्यादा ने उन्हें बाध्य कर रखा था कि वह एकाकी ही उत्तर भी ढूँढे। हरभजन सिंह की चुप्पी का यही कारण था।

घर के पिछवाड़े में धूप का तीखापन बढ़ने लगा था। हरभजन ने घड़ी देखी। साढ़े ग्यारह होने को आए थे। उन्होंने समाचार पत्र समेटा, रसोई में आकर ब्रेकफ़ास्ट टेबल पर रखा और अपने ही ख़्यालों में खोए हुए सीढ़ियाँ चढ़कर अपने कमरे में आ गए। सामने की खिड़की में खड़े हो सामने के आँगन में उगे हुए मेपल के पेड़ को देखने लगे। क्या देख रहे थे और क्या ढूँढ रहे थे, शायद उनकी चेतना नहीं जानती थी पर अवचेतन अवश्य ही उनकी दुविधा का समाधान खोज रहा था। अचानक वह बोल उठे 'एक बार तो जाना ही पड़ेगा। बचन की बातों की तह को तो छूना ही होगा। हरभजन ने निर्णय ले लिया था कि वह भी आज बचन की बात मान कर देखेंगे।' हरभजन ने दराज में से अपने कपड़े निकाले और नहाने चले गए। चुपचाप ही दोपहर का खाना खाया और आँखें बन्द कर टी.वी. के सामने बैठे रहे। गुरप्रीत ने भी उनसे कुछ नहीं पूछा। डेढ़ बजे के करीब हरभजन ने जूते डाले और वहीं से ही गुरप्रीत को आवाज़ देकर कहा कि वह गुरद्वारे जा रहे हैं। गुरप्रीत को लगा कि शायद अपनी परेशानी का हल ढूँढने ही दारजी गुरद्वारे जा रहे होंगे। उसने भी दूर से ही कहा -

'दारजी, बाबाजी से मेरी नौकरी की दुआ करना मत भूलना।'

'बेटी मैं तो हर साँस में अपने बच्चों की ख़ैरियत ही माँगता हूँ।' नज़रें चुराने के लिए मजबूर कर रहा था।

स्ट्रिप क्लब के दरवाज़े तक पहुँचते ही रास्ते भर का अपराध बोध गायब हो चुका था। अब हवस उनकी मानसिकता पर हावी हो चुकी थी। शीशे के दरवाज़े पर अन्दर की ओर से काला रंग करने के कारण वह दर्पण की तरह चमक रहा था। अपनी छवि को अन्तिम बार हरभजन ने देखा और दरवाज़े को खोल वह अन्दर चले गए। सामने ही लम्बे से डील-डौल वाला आदमी खड़ा था। उसकी टाई इस तरह से फँस रही थी कि मानो उसका गला घोंट रही थी, सूट के बटन इस तरह से खिंचे हुए थे कि अब टूटे कि अब टूटे। उसने हरभजन का अभिवादन किया और दूसरा दरवाज़ा खोल दिया। दूसरा दरवाज़ा खुलते ही एयरकण्डीशन की हवा का ठंडा झोंका एक मादकता को लिए हुए हरभजन के अन्दर तक उतर गया। शराब, परफ़्यूम, सिगरेट और सिगार की मिली जुली गंध संगीत की लहरी पर इतरा रही थी। वह अन्दर गए, एक पल के लिए ठिठक गए, बहुत अँधेरा लगा उन्हें। हल्की रोशनी के लिए जब आँखे अभ्यस्त हुईं तो उन्हें दिखा कि जहाँ वह खड़े थे वहाँ से हॉल दो हिस्सो में बँटता था। एक हिस्सा स्टेज के चारों तरफ़ फैला था। दूसरा हिस्सा जो कि स्टेज से थोड़ी दूरी पर था एक सीढ़ी चढ़कर था। शायद इसलिए कि पीछे बैठने वालों को भी बिना रुकावट के ठीक से दिख सके।

वह स्टेज से दूर, कोने की एक मेज पर जाकर बैठ गए। स्टेज अभी खाली थी। संगीत की हल्की धुन वातावरण को मादक बना रही थी। स्टेज नीली, जामुनी सी रोशनी में नहा रही थी। उनके बैठने के थोड़ी देर के बाद वेटरस आई तो उन्होंने एक बीयर का ऑर्डर दिया और तुरंत ही बीयर आ भी गई। वेटरस ने मेज़ पर ही पैसों का हिसाब किताब किया और अपनी टिप का धन्यवाद देकर चली गई। कुछ समय के बाद स्पीकर पर अगले डाँस की घोषणा हुई।

एक नवयौवना गोरी चमकीले वस्त्र पहने स्टेज पर मादक धुन पर मस्ती में झूमने लगी। पहली धुन समाप्त होते-होते वह अपने ऊपरी कपड़े उतार चुकी थी। दूसरी धुन के समाप्त होते-होते वह आधी निर्वस्त्र थी और तीसरी पर पूरी। कामुक भाव-भंगिमाओं और बीयर की चढ़ती हल्की सी ख़ुमारी में हरभजन सिंह वास्तविकता से कोसों दूर अपनी जवानी की ऊँचाइयों को छू रहे थे। उन्हें बचन का हर शब्द सच्चा और अपना तर्क थोथा लगने लगा। दूसरा डाँस शुरू होने तक उनकी दूसरी बीयर भी मेज़ पर आ चुकी थी। हरभजन शराब पीने के अभ्यस्त नहीं थे। उनके लिए तो एक ही बीयर की बोतल काफी थी। दूसरी बोतल तक तो नशे में हर चीज़ हल्की सी तैरती दिखाई दे रही थी। अपना घर-परिवार, अपना समाज अपनी मान-मर्यादा का कोई अर्थ नहीं रह गया था इस शराब और शबाब के नशे में। तीसरे डाँस से पहले स्पीकर फिर आवाज़ उभरी 'दोस्तो! आज का विशेष उपहार' ताज़ महल और राजाओं के देश से प्रस्तुत है वहाँ की राजकुमारी! अचानक हरभजन सिंह वास्तविकता की दुनिया में लौट आए। मन में अपार उत्सुकता जागी कि यह कौन हो सकती है?

अगली धुन शुरू होते ही एक भारत-वंशी नवयौवना मादक थिरकन लिए स्टेज पर झूम रही थी। हरभजन सिंह तन कर बैठ गए। रंग बदलते स्टेज के प्रकाश में वह गहरी निगाह से उसे पहचानने का प्रयत्न रहे थे। नशे के कारण निगाहें टिक नहीं पा रहीं थीं। एक-एक करके वह अपने कपड़े उतार कर स्टेज के आसपास बैठे मर्दों पर फेंक रही थी। जिसके हाथ में वह कपड़ा आता, वह उठ कर उसे चूमता हुआ झूमने लगता। हरभजन को लगने लगा कि वह लड़की स्वयं नहीं; यह मरद ही उसके कपड़े उतार रहे थे। किसकी लड़की हो सकती है...? प्रश्न बार-बार गूँज रहा था। वातावरण में छाई कामुकता और शराब के नशे ने सब कुछ धुँधला कर दिया था। जब वह नाचती-नाचती स्टेज के कोने पर बैठ कर थिरकती तो कोई युवक उठ कर उसकी जाँघ पर बँधे रिबन में डॉलर खोंसता; वह धन्यवाद करती हुई उस युवक की आँखों में आँखे डाल कर सारी कामुकता ढाल देती। पैसे देने वाला मुस्कुराता हुआ अपनी

कुर्सी में ढेर हो जाता। हरभजन यह सब देखते हुए भी इसमें ही खोए थे 'कौन है यह? क्यों कर रही यह सब कुछ?' जब तक कोई गोरी नाच रही थी तो उससे तो कोई रिश्ता नहीं था... पर यह तो अपनी है...! क्यों....? हरभजन वास्तविकता की दुनिया में लौट रहे थे। पहली धुन खत्म होते ही उन्होंने पूरे हॉल में नज़र दौड़ाई। कोई भी परिचित नहीं दिखा। इसकी चिंता अभी तक तो उन्हें नहीं हुई थी तो अब क्यों? उनकी चिन्ता बढ़ती गई। दूसरी धुन शुरू हो चुकी थी...। हरभजन अब तक जान चुके थे कि धुन के कौन से भाग में कौन-सा कपड़ा उतरने वाला है। वह इस सबसे अब दूर जा रहे थे। बार-बार उस स्टेज पर थिरकती लड़की के बारे उठ रहे प्रश्न उनका नशा उड़ा रहे थे। हॉल में फैली शराब की गंध उनका दम घोंटने लगी थी। धुन के अन्तिम चरण में जैसे ही नवयौवना ने अपनी ब्रा को खोलने के लिए हाथ उठाए, हरभजन एक ही झटके में उठ खड़े हुए। नहीं... वह यह नहीं देख सकते थे। कोई और होता तो दूसरी बात थी... पर यह... यह तो मेरी पोती भी हो सकती है! नहीं... नहीं... यह नहीं!! वह जितना शीघ्र हो सके उतना शीघ्र ही यहाँ से दूर हो जाना चाहते थे। बचन को यह सब अच्छा लगता हो 'लगे! वह तो ऐसे नहीं' उनकी जीवन की मान्यताएँ इतनी सस्ती नहीं!

वह लगभग भागते हुए सीढ़ी उतरते हुए फिसले और गिरते-गिरते बचे। अगर वह डील-डौल वाला नवयुवक न होता तो वह अवश्य ही गिरते। इस हड़बड़ाहट में उनकी पगड़ी खुल कर नीचे जा गिरी। उन्होंने जल्दी से झुक कर उसे समेटा और अपनी बाँहों में भर लिया। वह पहलवान से दीखने वाले युवक ने खी-खीकर हँसते हुए उनके लिए बाहर का दरवाज़ा खोल दिया।

हरभजन तेज़ी से कदम भरते हुए इस जगह से पल भर में ही दूर हो जाना चाहते थे। चलते-चलते वह पगड़ी बाँधने की चेष्टा कर रहे थे। अपने आदर्शों के थोथेपन और मूर्खता पर अपने आप को कोस भी रहे थे। कुछ दूर जाने पर उन्हें आभास हुआ कि इस हालत में घर कैसे जा सकते हैं? पगड़ी की हालत देख कर अगर गुरप्रीत ने कुछ पूछ लिया तो क्या उत्तर देंगे अपनी बहू को? वह वापिस क्लब की ओर लौट आए। क्लब की खिड़की में अपनी छवि को देख अपनी पगड़ी बाँधते हुए लगा कि खिड़की में उनकी नहीं किसी और की छाया है। वह अपनी नहीं किसी और की पगड़ी बाँध रहे हैं। कुछ संयत होकर एक बार फिर घर की ओर चले। अपराध-बोध उनको बुरी तरह से कचोट रहा था। कुछ कदम चलने के बाद उनके कदम स्वत: गुरद्वारे की ओर हो लिए। अब गुरद्वारे जाना उनके लिए आवश्यक हो गया था। ◆◆◆

Anil Bhasin

अनिल भसीन

१९९० से आपकी सेवा में

घर होता है जीवन का आधार।
घर वोह है, जहाँ मिले सुख – शान्ति और प्यार॥
जो भी "अनिल" के पास आया
उसने अपने सपनों का घर पाया॥

FREE HOME EVALUATION

Anil Bhasin

Sales Representative
Remax Realtron Realty Brokerage Inc.
183 Willowdale Avenue,
Toronto, M2N 4Y9
Cell: 416-410-GHAR(4427)
fax: 416-981-3400
anil@ghar.ca
www.ghar.ca

ANIL BHASIN'S GHAR.CA
GHAR MEANS HOME

RE/MAX® Remax Realtron Realty Brokerage Inc

Tel: 416-222-8600 Fax: 416-221-0199
183 Willowdale Avenue, Toronto, M2N 4Y9
Independently owned

राम जाने?

पंकज सुबीर

शर्मा आंटी कमरे में उसका बैग रखकर बोलीं 'बाथरूम उधर है।' शर्मा आंटी के कहते ही मालती बोल पड़ी 'मुझे पता है आंटी।'

शर्मा जी की पत्नी पहले तो कुछ उलझन में रहीं फिर सर पर हाथ मारते हुए बोलीं 'राम जाने मैं तो भूल गई थी कि सक्सेना जी से तो तुम्हारा बड़ा घरोबा था.

चेहरे भले ही अजनबी लग रहे हों लेकिन हर चेहरे के पीछे कहीं-कहीं से कुछ परिचित-सा झांक रहा है। जैसे दीवारों पर लगे हुए रंग की पपड़ियों और दरारों के पीछे से झाँकता है पुराना रंग और उस झांक रहे रंग को देखकर आश्चर्य मिश्रित खुशी के साथ लौट जाते हैं हम स्मृतियों के गलियारे में। अरे..। ये तो वही जाफरानी रंग है जो बड़की दीदी की शादी के समय करवाया था। कितना ढूँढा था तब मिला था ये... ? कैसी तो जगमग कर रही थीं दीवारें तब ? शादी का सुनहरी चुन्नी बेस पहनकर इसी दीवार के सामने खड़े होकर फ़ोटो खिंचवाई थी फ़िर बड़की दीदी ने। कित्ती अच्छी फोटो आईं थी दीदी की ? और फ़िर स्मृतियों के गलियारे में टहलते-टहलते ही पलकें भीग जाती हैं। यादों का सफर अक्सर आंसुओं पर ही समाप्त होता है।

'क्यों बाबा यहाँ पर एक सक्सेना जी रहते थे ना पहले' जहां कभी वो खुद रहती थी उस घर की जगह शॉपिंग काम्प्लेक्स बना देखा तो मालती ने बढ़कर सड़क के किनारे चाय की दुकान लगा कर बैठे बुज़ुर्ग व्यक्ति से पूछा। उसके घर से दो घर छोड़कर रहते थे सक्सेना अंकल। वह घर अभी भी लगभग वैसा ही है।

'कौन समय की बात कर रही हो बिटिया ?' खौलती हुई चाय में करछुल घुमाते हुए वृद्ध ने पूछा। कौन सा समय... ? समय तो अच्छा ही था, पर था कौन-सा ? अरे हाँ याद आया तब सिलसिला फिल्म आई थी 'तब जब सिलसिला फिल्म आई थी' मालती ने सुधियों के कोहरे में खड़े-खड़े ही उत्तर दिया। 'हाँ... ?' करछुल घुमाता वृद्ध का हाथ थम गया वो आश्चर्य से मालती की ओर देखने लगा। मालती झेंप कर सकपका गई 'कोई तेईस चौबीस साल पहले की बात है बाबा' मालती ने संभलते हुए जवाब दिया।

'अरे बिटिया कब की बात कर रही हो, आजकल तो चार पांच बरस में ही सब बदल जाता है' वृद्ध ने पुनः चाय में करछुल घुमाना प्रारंभ कर दिया 'अब तो यहां बड़े बाबू रहते हैं।'

'हां बाबा सही कहा', मालती ने ठंडी सांस छोड़ते हुए कहा, 'एक अच्छी-सी अदरक वाली चाय पिला दो बाबा।'

'अभी लो बिटिया' कहते हुए वृद्ध ने अपने बैठने का स्टूल लाकर मालती के पास रख दिया। 'बैठ जाओ कब तक खड़ी रहोगी।' मालती बैठकर आसपास के मकानों पर नजर डालने लगी। सचमुच कितना कुछ तो बदल गया है यहाँ, थोड़ा-बहुत ही कुछ रह गया है उस समय का।

'बाहर से आई हो।' वृद्ध के प्रश्न से मालती की तंद्रा टूटी।

'हां बाबा, ग्वालियर से आई हूँ, बहुत पहले रह चुकी हूँ यहाँ।' मालती ने भीगे स्वर में उत्तर दिया।

'ये सक्सेना जी तुम्हारे पहचान के रहे होंगे, जिनका तुम पूछ रहीं थीं।' वृद्ध ने अपनेपन से चाय का गिलास थमाते हुए पूछा।

'हाँ बाबा, बहुत अपने वाले थे।' कहकर मालती चाय पीने लगी, वृद्ध पुनः अपने काम में लग गया। सक्सेना अंकल जिस मकान में रहते थे वो आज भी वैसा ही है, हाँ सामने जो कार रखने का गैराज था उसमें दुकान बन गई है। व्यवसायिकता ने घरों को भी नहीं छोड़ा है। पहले घर के सामने बरामदे, दालान, तुलसी चौरा, गैराज, लान होते थे, आजकल दुकानें होती हैं। ऊपर गौरी का मकान नीचे पान की दुकान। सोचते ही हंसी आ गई मालती को। चाय वाले वृद्ध ने हाथ रोक कर मालती को देखा और फिर मुस्कुरा कर चाय बनाने लगा।

चारों तरफ चहल पहल है, मगर कभी जो चहल पहल उसके लिए अपनेपन से भरी होती थी आज वही चहल पहल सर्वथा अजनबी है। वही शहर है, मगर उस समय का कुछ भी नहीं है, कोई भी ठिठककर नहीं देख रहा या पूछा रहा। 'अरे मालती... यहां कैसे बैठी हो?' गली, मकान, रास्ते अगर पूछ सकते तो शायद पूछ ही लेते 'अरे मालती... बड़े दिनों बाद आई इधर?'

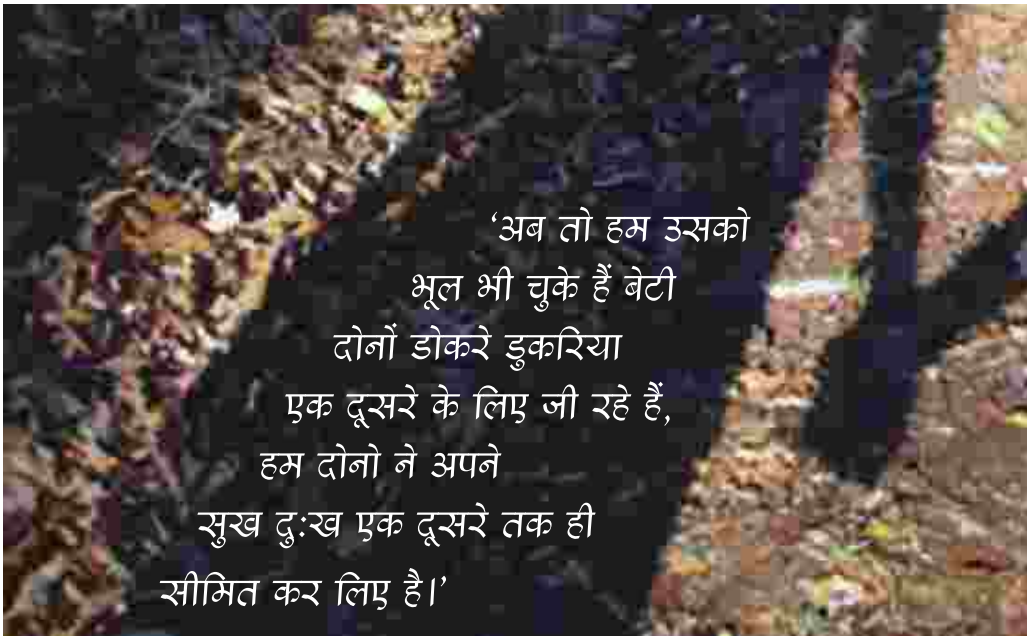

'क्यों बड़े बाबू आप जिस घर में रहते हो उसमें पहले कोई सक्सेना जी रहते थे क्या?' चाय वाले का स्वर सुनकर मालती ने उस ओर देखा। चाय वाले ने मालती की ओर पीठ करके खड़े व्यक्ति से प्रश्न पूछा था।

'हाँ बहुत पहले की बात है, क्यों क्या हो गया?' उस व्यक्ति ने उत्तर दिया।

'ये बाई साहब पूछ रहीं थी।' चायवाले ने मालती की और इशारा करके उत्तर दिया। इशारों का अनुसरण करते हुए वह व्यक्ति मालती की ओर पलटा। उसका चेहरा देखते ही मालती को कुछ परिचित-सी झलक मिली और थोड़े से मानसिक प्रयास में ही सब स्मृत हो गया।

'अरे शर्मा अंकल आप।' कहते हुए मालती ने उठकर उन बुजुर्ग सज्जन के पैर छू लिए।

'अरे-अरे कौन हो बेटी तुम?' वृद्ध ने कुछ सकुचाते हुए मालती के सर पर हाथ रखते हुए पूछा।

'अंकल मैं मालती हूँ, भार्गव जी की बेटी।' मालती ने उत्तर दिया। यहाँ तो उसका यही परिचय है भार्गव जी की बेटी मालती। यहाँ पर अगर ये परिचय देगी कि मैं दुबे जी की पत्नी हूँ तो कौन पहचानेगा?

'अरे... तुम मालती हो मैं तो पहचान ही नहीं पाया बेटी।' मालती ने देखा उन सज्जन का चेहरा अपनेपन से भीग गया है। शर्मा जी उसके पापा के आफिस में क्लर्क थे काफी आना-जाना था उसके घर।

'कब आईं बेटी और कहां ठहरी हो?' शर्मा जी ने अपनत्व भरे स्वर में पूछा।

'बस सुबह ही आई थी, यहां सरकारी काम से आई थी, काम तो हो गया अब रेस्ट हाउस जा रही थी तो सोचा इधर से होती हुई चलूँ।' मालती ने उत्तर दिया।

'रेस्ट हाउस क्यों? तुम्हारा घर नहीं है क्या यहां? चलो घर चलो।' कहते हुए शर्मा जी ने उसका बैग उठा लिया। मालती ने विरोध करना चाहा मगर मालती होती तो विरोध करती यहां तो वो मालती बिटिया हो गई है। उसने पर्स से पांच का नोट निकाल कर चाय वाले की ओर बढ़ाया, मगर शर्मा जी की आंखों का इशारा पाकर उसने भी हाथ जोड़ दिए 'रहबे दो बिटिया, तुम तो यहां की बिटिया हो तुमसे का लेना, हम बड़े बाबू से ले लेंगे।' उस स्वर में इतना अपनापन था कि मालती कुछ भी बोल नहीं पाई।

'चलो बेटी।' शर्मा जी का स्वर सुनकर मालती चुपचाप उनके पीछे चल पड़ी। घर के गेट पर पहुंचकर एक क्षण को ठिठक गई मालती, लगा अभी चीखती हुई निकलेगी सुनीता बाहर।

'आ गईं आप? घड़ी देखी है? तीन यहीं बज गए हैं। अब आ रहीं है मैडम हिलती-डुलती। कितनी बार कहा है मुझे फिल्म की स्टार्टिंग छूटना बिलकुल अच्छा नहीं लगता। एक तो अंधेरे में टटोलते हुए अपनी सीट तक पहुंचो और फ़िर आस पड़ोस वालों से पूछो भाई साहब कितनी निकल गई है फिल्म।' इतना लंबा लेक्चर एक सांस में सुनाकर उसकी बाँह खींचती हुई ले जाएगी उसे।

'क्या हुआ बेटी?' मालती को ठिठकते देखा तो शर्मा जी ने पूछा।

'कुछ नहीं अंकल, देख रही हूँ कितना कुछ बदल गया है।' मालती ने बढ़ते हुए उत्तर दिया।

'अरे सुनती हो... देखो तो कौन आया है?' घर मे प्रवेश करते हुए बोले शर्मा जी। कुछ ही देर में उनकी पत्नी साड़ी का पल्लू संभालते हुए आ गईं। मालती को देख कर पहचानने का प्रयास करती रहीं, मालती ने बढ़कर पैर छुए तो वे आँखों में प्रश्नचिह्न लिये शर्माजी की ओर देखने लगीं। 'अरे ये मालती है अपने शर्मा जी की बिटिया।' शर्मा जी ने हंसते हुए कहा।

'अरे... तू है बिटिया, राम जाने हम तो पहचान ही नहीं पाए।' मालती को बाँहों में समेटते हुए बोलीं वे।

'आंटी आपका राम जाने अभी छूटा नहीं?' मालती ने हंसते हुए कहा।

'अब बुढ़ापे में क्या छूटेगा बेटी, तू अकेली आई है?' शर्मा आंटी ने कहा।

'हाँ आंटी सरकारी काम से आई थी। सुबह से वहीं थी अब शाम को फुरसत हुई तो सोचा चल कर पुरानी जगह देख लूँ। बाहर अंकल जी मिल गए तो यहाँ खींच लाए।' मालती ने मुस्कुराते हुए कहा।

'अच्छा तो किया, चल चलकर मुंह हाथ धो ले, सुबह से काम में लगी है राम जाने कुछ खाया भी है कि नहीं, मैं फटाफट कुछ बना लाती हूँ।' कहते हुए शर्मा आंटी ने उसका बैग उठाया और अंदर चल पड़ीं, यंत्र चलित सी वो भी पीछे-पीछे चल पड़ी। शर्मा आंटी कमरे में उसका बैग रखकर बोलीं 'बाथरूम उधर है।' शर्मा आंटी के कहते ही मालती बोल पड़ी 'मुझे पता है आंटी।' शर्मा जी की पत्नी पहले तो कुछ उलझन में रहीं फिर सर पर हाथ मारते हुए बोलीं 'राम जाने मैं तो भूल गई थी कि सक्सेना जी से तो तुम्हारा बड़ा घरोबा था, चल झटपट आजा।' कहती हुई शर्मा आंटी बाहर चली गईं।

यही तो है वो कमरा जहाँ सपनों के समान सुनहरे दस साल उसने अपनी सबसे प्यारी सहेली सुनीता के साथ धमाचौकड़ी करते हुए बिताए थे, दीवारें वही हैं मगर कमरे के अंदर का सामान बदल गया है।

'तू इस गाने को आखिर कितनी बार सुनेगी?' स्मृतियों के कुहासे से सुनीता का स्वर गूंजा।

'दस बार सुनूंगी।' अपनी ही आवाज की प्रतिध्वनि गूंजी और स्मृतियों में गूंजने लगा गीत का मद्धम मद्धम स्वर, ये कहां आ गए हम यूं ही साथ साथ चलते।

'बंद कर दो मैडम मेरे कान पक गए हैं।' खट की आवाज के साथ टेप रिकार्ड बंद हुआ तो मालती चौंकी, देखा तो वो अकेली कमरे में है, कोई नहीं है।

फ्रेश होकर बाहर आई तो देखा टेबल पर ढेर सारा नाश्ता रखा है, मठरी, बिस्किट, दाल मौंठ, और न जाने क्या क्या। 'आ जा बेटी।' उसे आते देखा तो हाथ मे हलवे की कटोरियां लेकर आती हुई शर्मा आंटी बोलीं।

'अरे आंटी इतना कुछ क्यों कर लिया...' मालती की बात को बीच में ही काट कर शर्मा आंटी बोलीं 'कुछ नहीं किया है, इतना तो राम जाने रखा ही था मैंने तो बस हलवा बनाया है।'

'मम्मी इसे गाजर का हलवा पसंद है इसका मतलब ये थोड़े ही है कि हर दूसरे रोज हमें भी जबरदस्ती खाना पड़ेगा।' स्मृतियों में फिर सुनीता की आवाज़ गूंजी, मालती ने मुस्कुराकर शर्मा आंटी के हाथ से हलवे की कटोरी ले ली। शर्मा जी ने भी कटोरी लेने का प्रयास किया तो हाथ पीछे खींचते हुए बोलीं शर्मा आंटी, 'आप तो रहने दो नमकीन मठरी खाओ

ना, रखी तो है।' मालती खिलखिलाकर हंस पड़ी।

नाश्ते के दौरान शर्मा जी और उनकी पत्नी घर का कुशलक्षेम पूछते रहे, पापा ने अपने मातहतों को कभी मातहत नहीं समझा शायद उसी का परिणाम है कि उसे आज इतना प्रेम और स्नेह मिल रहा है। अच्छे कर्म फूलों के बीज होते हैं जिन्हे बो कर भूलना होता है, समय आने पर ये अपने आप ही सुगंध देने लगते है, पापा इसीलिए हमेशा कहते हैं 'बेटा कुर्सी और पद स्थायी चीज नहीं है बस ये कभी मत भूलना।'

नाश्ते के बाद शर्मा आंटी रात के खाने के लिए उसकी पसंद की सब्जी वगैरह पूछकर बाजार चली गईं। मालती शर्मा जी से बातें करती रही। अपनी सारी सहेलियों के बारे मे पूछ लिया। उसने सहेलियों के नाम से तो नहीं हाँ उनके पिताओं के बारे में बताने पर शर्मा जी चीह्न लेते थे। 'अच्छा निगम साहब की बिटिया की पूछ रही हो वो तो अमेरिका में है।' पता ये चला कि उसकी कोई भी सहेली अब यहां नही है, सारी चिड़ियाएं उड़ चुकी हैं। बहुत अजीब लगा उसे एक सूनापन सा लगा था, अब यहां कोई नहीं है उसका। जब सरकारी काम से यहां आने का आदेश मिला था तब कितना खुश थी वो, अपने शहर को, अपने लोगों को फिर से देखने की कितनी उत्सुक्ता थी। मगर यहां तो कोई भी नहीं है समय ने सारे चेहरे बदल डाले हैं।

सुनीता के बारे में ये तो पता था कि वो कोलकत्त में है मगर अंकल आंटी भी यहां से चले गए हैं ये उसे पता नहीं था। बातों ही बातों में उसने शर्मा जी को बता दिया था कि वो डिप्टी कलेक्टर हो गई है, उसने देखा था कि यह सुनकर शर्मा जी के चेहरे के भाव ऐसे हो गए थे मानो उनकी खुद की बेटी डिप्टी कलेक्टर हो गई हो।

'राम जाने ये सब्जी वाले इत्ती किच किच करते हैं कि अच्छे खासे आदमी को पागल कर दें।' सब्जी और दूसरे सामान के झोलों से लदी-फदी शर्मा आंटी ने घर में घुसते हुए कहा।

'यही बात आज सब्जी वाला भी अपनी घरवाली से जाकर कहेगा।' हंसते हुए कहा शर्मा जी ने।

'तुम्हारी ठिठौली करने की आदत नहीं गई, चल बेटी जरा हाथ बँटा मेरा चल के।' शर्मा आंटी ने कहा।

'अरे उसे कहां परेशान कर रही हो, पता है डिप्टी कलेक्टर हो गई है ये, उसे कहां आता होगा ये सब।' शर्मा जी ने झिड़की वाले स्वर मे कहा।

'डिप्टी क्या पूरी कलेक्टर भी हो जाए तो होती रहे, मुझे क्या मतलब ? मेरे लिए तो वही रहेगी जो पहले थी,' शर्मा आंटी ने झिड़की का जवाब झिड़की से दिया।

मालती उठकर शर्मा आंटी के साथ चल दी। रसोईघर में खाना बनाते-बनाते दुनिया जहान की चर्चा होती रही दोनों के बीच और उसी दौरान मालती ने शर्मा आंटी से उनकी इकलौती बेटी सुरेखा के बारे में पूछा लिया, 'आंटी मैने सुरेखा के बारे में अंकल से पूछा तो उन्होने बात पलट दी थी, सुरेखा ठीक तो है ना।'

आलू काटते शर्मा आंटी के हाथ रुक गए थे, फिर बोलीं 'भाग गई थी किसी के साथ जब उसने धोखा दिया तो पंखे से लटककर मर गई।' शर्मा आंटी का स्वर इतना सपाट और शुष्क था कि सिहर गई थी मालती। कुछ देर चुप्पी रही थी फिर शर्मा आंटी ही बोलीं थीं। 'अब तो हम उसको भूल भी चुके हैं बेटी दोनों डोकरे डुकरिया एक दूसरे के लिए जी रहे हैं, हम दोनो ने अपने सुख दु:ख एक दूसरे तक ही सीमित कर लिए है।'

मालती चुपचाप नीचे मुंह करके कोतमीर (हरा धनिया) साफ करती रही कुछ कहने का साहस ही नही हो रहा था। अचानक कंधे पर शर्मा आंटी के हाथ का स्पर्श पाकर ऊपर देखा तो शर्मा आंटी की आंखें भरी हुई थीं, 'पर सच कहूँ बेटी, राम जाने आज तुझे देखकर बड़ी ठंडक मिली, लगा अपनी सुरेखा ही आ गई है,' शर्मा आंटी भरे गले से बोलीं।

'आ क्या गई है राम जाने हूँ ही।' मालती ने मुस्कुराते हुए कहा।

राम जाने सुनकर शर्मा आंटी भरी आंखो में भी ठठा पड़ीं और पल्लू से आंखे पौंछने लगी।

रात को तीनों एक साथ खाना खाने बैठे, खाने के दौरान भी बातों का दौर चलता रहा। खाने से निबट कर मालती शर्मा आंटी के साथ रसोई का काम निबटाती रही, सारा काम समेटा तो शर्मा आंटी बोलीं, 'बेटी तू तब तक अपन तीनों के लिए काफी बना ले, जब तक मैं पिछवाड़े के दरवाजे वगैरह बंद कर आऊँ, तेरे अंकल की और मेरी आदत है रात के खाने के बाद सामने के बरामदे में बैठकर काफ़ी पीने की, आज तू भी है तो और अच्छा लगेगा।' कहती हुई वे चली गईं।

देर रात तक तीनों बरामदे मे बैठे बातें करते रहे। रात जब मालती सोने के लिए कमरे में पहुंची तो उसे कुछ विचित्र सी अनुभूति हो रही थी। किसी को अचानक पहुंच कर सुख दे देने की अनुभूति। उसी पुराने कमरे में बैठी तो लगा मानो समय बीच के तेईस वर्षों के अंतराल को पाटता हुआ वहीं पहुंच गया है जहां पर सोने जैसे दिन और चांदी की रातें थी।

उसकी ज्यादातर रातें सुनीता के साथ यहीं गुजरती थीं। विशेषकर परीक्षाओं के समय तो रातें सुनीता के साथ यहीं गुजरती थीं। उसके अपने घर मे पांच भाई बहनों के भरे पूरे परिवार के कारण एकांत मिलना थोड़ा मुश्किल था। सुनीता के यहां ऐसा कुछ नहीं था। भाई बैंगलौर में पढ़ रहा था सुनीता और उसके मम्मी पापा यहां रहते थे। मालती की एकांतप्रियता के लिए सर्वथा उपयुक्त स्थान था ये कमरा।

'मुहब्बत आज प्यासी है बड़ी गहरी उदासी है।' मालती के आंखे बंद करते ही अतीत में मद्धम सा गीत गूंज उठा।

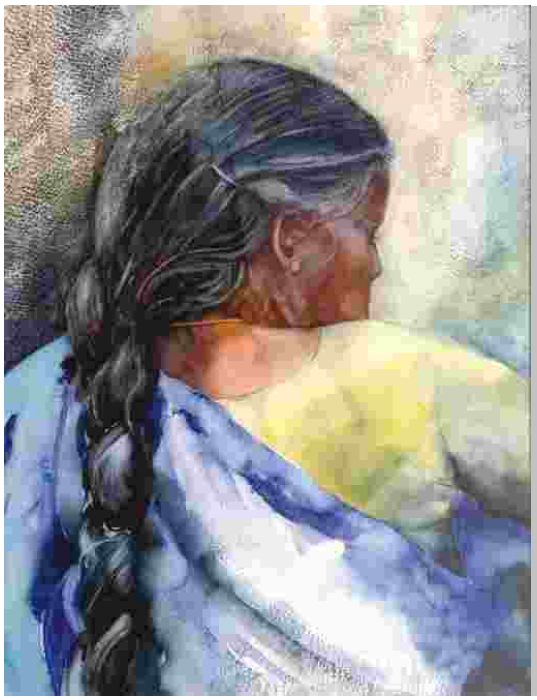

अचानक कंधे पर शर्मा आंटी के हाथ का स्पर्श पाकर ऊपर देखा तो शर्मा आंटी की आंखें भरी हुई थीं, 'पर सच कहूँ बेटी, राम जाने आज तुझे देखकर बड़ी ठंडक मिली, लगा अपनी सुरेखा ही आ गई है,' शर्मा आंटी भरे गले से बोलीं।

'क्या बात है मैडम बड़े दर्दीले गीत सुने जा रहे हैं, कोई चक्कर वक्कर तो नहीं हो गया।' सुनीता का स्वर आया।

'अपने जैसा सबको मत समझा कर तू, समझी।' मालती का स्वर गूंजा।

'अच्छा... ? मेरा क्या चक्कर चल रहा है ?' गुस्साया हुआ सुनीता का स्वर आया।

'तो फिर तुझे कैसे पता कि चक्कर चलने पर दर्दीले गीत सुने जाते हैं,' मालती की आवांज आई।

'फिल्मों मे नहीं देखते क्या ?' सुनीता का स्वर सुनाई दिया।

'अच्छा बाबा ठीक है, अब तू अपना टेप रिकार्ड बंद करे तो मैं ये टेप रिकार्ड सुन लूँ।' मालती ने कहा।

'कौन मना कर रहा है सुनने को, पर ढंग का तो सुन, ये एक घंटे से तो तू नीले आसमां का सुला रही है,' स्मृतियों के धुंधलके में फिर सुनीता का स्वर गूंजा, मालती को लगा कि बरसों पहले की ये आवाजें आज सुधियों के पर्वतों से टकराकर प्रतिध्वनित होकर वापस आ रही हैं और यूं लग रहा है मानो ये सब आज ही हो रही हैं।

हर एक पल बीत जाने की नियति लेकर आया है। जो बीत जाता है वो सुधियों के कोष में संचित हो जाता है, जहां हम उसे महसूस तो कर सकते हैं लेकिन उसे फिर से जी नहीं सकते। यहां भी वो ऐसे ही पलों को समेटने आई थी, यहां सुधियों का तो कोई साथी नही मिला, हाँ शर्मा आंटी और अंकल जरूर मिल गए, अपने विगत को विसर्जित कर केवल आगत को लेकर जी रहे टूट चुके मगर फिर भी बिखरे नहीं ये लोग।

सुधियों के मरुथल में भटकते हुए कब आँख लग गई कुछ पता ही नहीं चला। सुबह नहा धोकर अपना सामान लिए जब नीचे आई तो शर्मा अंकल और आंटी चाय पीते मिले।

'आ जा बेटी...। पर ये सामान क्यों ले आई ?' शर्मा आंटी ने उसे देखते ही कहा।

'जाना है आंटी कल एक कार्यक्रम है उसकी तैयारियां भी देखनी हैं।' मालती ने उत्तर दिया।

शर्मा आंटी का चेहरा कुछ फीका पड़ गया फिर संभलते हुए बोलीं 'तू अपने अंकल के साथ बैठकर चाय पी तब तक मैं तेरी रास्ते की व्यवस्था कर के आती हूँ।' कहकर उठके अंदर चली गईं। कुछ देर बाद एक प्लेट में पराठे और दही लिये आईं और रखकर बोलीं 'ले फटाफट खाले मैं रास्ते के लिए भी रख देती हूँ।'

'अरे रास्ते का तो रहने दो आंटी।' मालती ने कहा किंतु शर्मा आंटी का झिड़की भरा स्वर आया 'क्यों रहने दो, राम जाने घर कब पहुंचेगी, चुपचाप खा ले मैं आती हूँ।' थोड़ी देर में एक टिफिन और पानी का बॉटल लाकर टेबल पर रख दी शर्मा आंटी ने। मालती ने फिर कहा 'अरे आंटी ये टिफिन में क्यों रख दिया ? वापस कैसे भेजूंगी इसे ?'

'अपनी कलेक्टरी दिखा रही है मुझे।' शर्मा आंटी कुछ तेज स्वर में बोलीं, मालती ने देखा उनकी आंखें डबडबा गईं हैं।

'अरे नहीं आंटी।' कहती हुई मालती उठी और शर्मा आंटी को बांहों में भर लिया। अपनी पीठ पर गर्म आंसुओं की नमी और कांपते हुए हाथों की छुअन का एहसास हुआ उसे।

'अच्छा चलती हूँ।' शर्मा आंटी के हाथों को स्नेह से दबाते हुए कहा मालती ने।

'चलती हूँ क्या मतलब ? हम दोनों चलेंगे तुझे बस स्टेण्ड तक छोड़ने।' शर्मा आंटी ने पल्लू से आंखें पोंछते हुए कहा। इस बार मालती ने कोई विरोध नहीं किया। मालती को बस में बिठा कर दोनों पति-पत्नी खिड़की के पास खड़े हो गए। धीरे-धीरे बस बढ़ी और बढ़ती चली गई। दूर धुंधले दो साए हाथ हिलाते धीरे-धीरे अदृश्य हो रहे थे। उसी बिन्दु पर दृष्टि जमाए मालती सोच रही थी क्या सोच कर यहां आई थी कि स्मृतियों की धूल में से कुछ सुनहरे पत्थर तलाश करेगी। मगर यहां तो कुछ और ही हो गया। सुधियों के शहर से कुछ और स्मृतियां आंचल में बांध कर ले जा रही है। समय के श्राप से पत्थर बन चुकी ऐसी दो ज़िंदगियों की स्मृतियां, जो पत्थर बनकर भी फूलों की तरह महक रही हैं। इनका उद्धार करने कोई राम आता है या नहीं, राम जाने...। ◆◆◆

Maharani Fashions

- Ladies Designer Suits
- Sarees
- Salwar Kameez
- Men's Suiting
- Imitation Jewellery

An Exciting Collection of The
Latest in Festive Fashions!!!

1417 Gerrard Street East, Toronto,
Ontario M4L 1Z7
Tel: 416-466-8400

रिश्ता

सुधा गुप्ता, केनेडा

इस स्नेहयुक्त भाई के रिश्ते में न तो रक्षाबंधन आता है और न ही भाईदूज. परन्तु इससे भी एक गहरा रिश्ता है - स्नेह का, नेह का जो एक अनजान धागे से बंधा हुआ है.

वह सुबह कुहासों से भरी थी, जब मैं बिस्तर से उठी. और दिनों की तरह ही मैंने खिड़की का पर्दा हटाया इस आशा से कि प्रात:कालीन सु:खद धूप मेरे बिस्तर पर पड़ेगी, परन्तु सुबह के कुहासे ने मेरी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया. मैं नित्य कर्म से निपटकर जैसे ही ड्राइंग रूम में पहुँची फोन की घंटी घनघना उठी.

फोन के दूसरी तरफ मेरी पुत्री जो चिन्नई के होटल मैनेजर का कोर्स कर रही थी, बोली - 'माँ मैं दोपहर तक दिल्ली अपनी एक सहेली पूजा - जो चंडीगढ़ की रहने वाली थी, के साथ आ रही हूँ.'

मैं फोन सुनकर बहुत प्रसन्न हुयी और रसोई घर में अपनी बेटी अर्पिता और उसकी सहेली पूजा के लिए उसकी पसंद का गाजर का हलवा, मूली का परांठा और कुछ अन्य चीजें बनाने में व्यस्त हो गयी. तत्पश्चात मैंने स्नानघर में जाकर गीज़र चला कर ड्राइंग रूम के सोफे के कवर बदले और शयन कक्ष के भी चादर और तकिये के गिलाफ बदलकर एक नज़र पूरे घर पर डाली और स्नान करने चली गयी.

स्नान करके जैसे ही बाहर आयी, अर्पिता का दुबारा फोन आया - 'मम्मी मैं पूजा को लेकर चांदनी चौक जा रही हूँ. उसे कुछ शॉपिंग करनी है. उसके बाद उसे नयी दिल्ली से चंडीगढ़ की ट्रेन पर चढ़कर मैं शाम तक सोनाली - एक दूसरी सहेली जो सुखदेव विहार में रहती थी, से मिलकर घर आऊंगी. तुम चिंता मत करना.' मैंने कहा - ठीक है.

पूजा को शॉपिंग करवाकर उसे नयी दिल्ली के स्टेशन पर चंडीगढ़ जाने वाली ट्रेन में बिठाकर अर्पिता जब तक सोनाली के घर पहुंची, संध्या घिर चुकी थी. सोनाली से अर्पिता एक लम्बे समय के बाद मिली थी. अत: सोनाली ने कहा कि आज कि रात मेरे घर रह जाओ, कल चली जाना. परन्तु अर्पिता ने कहा - 'नहीं मेरी माँ मेरा इंतज़ार कर रही होगी.' मुझे घर जाना है.

थोड़ी देर बातचीत करने के बाद अर्पिता सुखदेव विहार से बस पकड़कर पालम विहार आ गयी. यह घटना दिसम्बर की है. इस समय दिल्ली में कड़ाके की सर्दी पड़ती है और दिन भी बहुत छोटे होते हैं. अत: दिन का उजाला समाप्त हो चुका था और उसकी जगह रात्रि की कालिमा ने आ घेरा था.

जब अर्पिता पालम विहार पहुंची, तब तक रात की आखिरी बस द्वारिका की जा चुकी थी. अब उसे थोड़ा भय लगने लगा कि घर कैसे पहुंचा जाये. बस अड्डे पर जितने भी रिक्शेवाले थे, सभी से उसने पूछा द्वारिका जाने के लिए. परन्तु कोई भी जाने लिए तैयार न था. अंत में 19-20 वर्ष का एक पतला-दुबला लड़का सुरेश जो इस शहर में नया आया था, बोला - दीदी मैं चलूँगा, परन्तु आपको रास्ता बताना होगा. मैं इधर पहली बार आया हूँ. मुझे रस्ते का कोई ज्ञान नहीं है.

इधर अर्पिता का दोपहर के बाद कोई फोन नहीं आया. अत: मेरे मन में बुरे-बुरे विचार आने लगे और प्रसन्नता का स्थान चिंता ने ले लिया. शाम को मेरा छोटा बेटा वैभव जो दिल्ली में ही कंप्यूटर विज्ञान की पढ़ाई कर रहा था वापस आया. उसके आते ही मेरे लाख प्रयत्न करने के बाद भी मेरी आँखों से आंसू टपक पड़े और एक ही सांस में उसे सारे दिन की घटना सुना गयी. सुनकर वह भी बहुत घबराया परन्तु मुझे आश्वासन दिया कि मम्मी चिंता मत करो. दीदी आ जायेगी.

वैभव को थोड़ा बहुत खिलाकर उसे सोने को बोली. परन्तु उसकी आँखों में भी के लिए

चिंता थी. हम दोनों अर्पिता के बारे में ही बातें कर रहे थे कि तभी उसके पापा का पांचवी बार फोन आया. अर्पिता के घर न पहुंचने से वे बहुत परेशान थे. जैसे ही मैंने फोन रखा कि दरवाजे कि घंटी बजी. वैभव ने उठकर दरवाज़ा खोला. सामने अर्पिता को देखकर लगा हमारे जान में जान आयी. वैभव अपने पापा को फोन करने के लिए दूसरे कमरे में गया.

अर्पिता के पीछे वही दुबला-पतला लड़का जिसका नाम सुरेश था, इस ठण्ड में केवल एक आधी बाजू कि कमीज़ और पाजामा पहने सूटकेस लिए खड़ा था. मैंने उसे अंदर बुलाया. फिर हम सबने खाना खाया. तत्पश्चात मैंने अपने पति का एक स्वेटर, कम्बल और बिस्तर दिया और नीचे जाकर गैराज खोल कर सुरेश से कहा कि आज की रात यहीं सो जाओ. कल चले जाना. उसने कहा - अच्छा दीदी.'

दूसरे दिन सुबह उठने के बाद मैंने सुरेश को ऊपर बुलाया. सुरेश के नाश्ता करने के बाद मैंने अपने पति के कुछ पुराने गर्म कपड़े, उसको दिए. जाते समय रिक्शा का भाड़ा भी दिया. वह बहुत प्रसन्न हुआ. मैं सुरेश पर बहुत खुश थी, क्योंकि उसने मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया था, मेरी बेटी अर्पिता को सुरक्षित घर पहुंचाकर.

उस दिन मुझे जीवन में पहली बार लगा कि धन, दौलत से भी बढ़कर एक चीज़ है - 'वह है इंसानियत.' सुरेश एक अनपढ़ गरीब इंसान ही तो है - परन्तु हम अमीरों से भी बढ़कर. इसके बाद वह मुझे पालम विहार में जब भी बस से उतरती और उसे देखती, वह दीदी कहकर अपना रिक्शा आगे लाकर मेरी प्रतीक्षा करता. मेरे सहोदर दो भाई हैं. हम सभी केनेडा में रहते हैं. परन्तु बिना रक्त के रिश्ते के इस भाई को क्या कभी भूल सकूंगी? शायद आजीवन नहीं. आज इतने साल बीत चुके हैं परन्तु ऐसा प्रतीत होता कि यह कल की बात है.

इस स्नेहयुक्त भाई के रिश्ते में न तो रक्षाबंधन आता है और न ही भाईदूज. परन्तु इससे भी एक गहरा रिश्ता है - स्नेह का, नेह का जो एक अनजान धागे से बंधा हुआ है. सुरेश शायद पिछले जन्म में मेरा सहोदर भाई ही था, तभी तो इस जन्म में मुझ पर एक इतना बड़ा उपकार कर गया कि मैं जन्म-जन्मान्तर तक उसकी ऋणी हो गयी. ◆◆◆

Chander M. Kapur, CMA, CA

Professional Corporation
Chartered Accountant

2750 14th Avenue, Suite #201
Markham, Ontario
L3R 0B6

Tel: (905) 944-0370
Fax: (905) 944-0372
E-mail: cmkapur@rogers.com

एक संस्मरण

दृश्य-पटकथा-पात्र

✍ शशि पाधा, यू.एस.ए.

नेपथ्य से – मेरी आवाज़ में :

मेरे मध्यवर्गीय माता पिता का घर। प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर करीने से लगी हुई। छोटा-सा आँगन, गुलाब-गेंदा आदि सभी मौसमी फूलों से शोभित छोटी-सी बगिया, तुलसी का चौबारा, धूप-दीप तथा फूलों से सुगन्धित ठाकुरद्वारा, शयन कक्ष में अलमारी में साहित्यिक पुस्तकें सजी हुईं। यानि पूरा का पूरा घर साफ़-सुथरा। पिता कहते थे स्वच्छ घर में लक्ष्मी का निवास होता है। वैसे माता-पिता दोनों शिक्षक थे। अत: लक्ष्मी से अधिक सरस्वती का निवास ही था हमारा घर।

दृश्य एक – कुछ वर्षों के बाद :

रिटायर्ड माता-पिता का शयन कक्ष। चारपाइयों के दोनों ओर तिपाई पर बहुत सारी पुस्तकें-पत्रिकायें, बिना खोल के दो-दो चश्में (एक दूर का एक पास का) पानी पीने का ग्लास तथा ताँबे का पानी भरा लौटा। दोनों का अपना-अपना दवाइयों का प्लास्टिक का डिब्बा। पिताजी की तरफ खिड़की की सिल पर पँचांग, कल्याण के नये पुराने अँक, पत्र लिखने के लिये उनके नाम का पैड, पैन, पास ही ऊनी टोपी, जुराबें हाथ-पाँव पोंछने के लिये छोटा-सा तौलिया, चश्में के खोल, कुछ नये पुराने पोस्ट कार्ड आदि-आदि न जाने कितनी छोटी मोटी चीज़ें। माताजी की चारपाई के पीछे की सिल के स्थान पर बिस्तर गर्म करने के लिये रबर का पैड, छोटा सा ट्राँजिस्टर, कुछ भजनों की कैसटें। शरतचन्द्र, वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास, एक छोटा पर्स जिसमें यहाँ-वहाँ देने के लिये कुछ पैसे, हाथ पाँव मे दर्द के लिये लगाने वाली कोई टयूब, आदि-आदि न जाने कितनी चीज़ें। यानि उनका सारा वैभव, सारा संसार, सारी आवश्यकताएँ सिमटकर उनकी चारपाइयों के इर्द-गिर्द समा गईं। कभी-कभी मुझे इतना सामान देख कर खीज आती थी तो धैर्य की मूर्ति मेरे पिता मन्द-मन्द मुस्कुरा कर कहते 'सुविधा रहती है, किसी को आवाज़ नहीं देनी पड़ती।' मैं चुप रहती। वैसे भी मैं साल में एक-आध बार ही तो उनसे मिलने जाती थी, क्या फ़र्क पड़ता था।

35 वर्षों बाद–नेपथ्य से मेरी आवाज़ :

अत्यन्त रोमांचक, शौर्य पूर्ण कार्यों से भरा पूरा जीवन जीने के बाद अब मेरे सैनिक अधिकारी पति रिटायर्ड हो गए हैं। बड़े-विशाल सरकारी सुसज्जित भवनों (जिनके साथ अति सुन्दर बाग-बगीचा) में ही हमारा अधिकांश जीवन बीता। उन घरों की सफ़ाई तथा देख-रेख के लिये हमारे साथ बहुत से सहायक रहते थे। यानि घर की सुई के लिये भी निश्चित स्थान। सारा घर सजा-सजाया, साफ़ सुथरा।

अब हम अपने बच्चों के साथ अमेरिका में रहने के लिये आ गए हैं। भरा-पूरा परिवार है, बड़ा- सा घर भी है।

दृश्य दो :

हमारे शयन कक्ष में क्वीन साइज़ बेड के पास नाइट स्टैंड पर एक-एक टेबल लैम्प, दोनों की तरफ़ दो-दो चश्में (खोल के बिना) नीचे के खुले दराज़ों में मेरी साइड पर एक छोटी डिबिया जिसमें मैं रात को सोने से पहले अँगूठी आदि रखती हूँ, वैस्लीन का जार, पीठ दर्द के लिये लगाने वाली दवाई की टयूब, फोन का चार्जर, टिशु पेपर का रोल, मेरी पूर्ण-अपूर्ण रचनाओं की डायरियाँ, कुछ नई पुरानी हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ। लिखने के पैड, पेन-पेंसिलें आदि-आदि न जाने छोटी-मोटी कितनी चीज़ें। एक छोटी टेबुल पर छोटा-सा सी.डी. सिस्टम जिसके साथ ही पड़ी रहती हैं गुलज़ार, फ़रीदा खानुम, आशा भोंसले, मुकेश, जगजीत आदि की मशहूर सीडीज़ का संग्रह।

मेरे पति के टेबुल पर दो चश्में, हाथ की घड़ी, टेलीफोन के नम्बरों की डायरी। नीचे खुली दराज़ के एक खाने में दवाइयों का प्लास्टिक का डिब्बा, चश्मों के खोल, पेन और वालेट।

दूसरे खाने में हाथ-पाँव पोंछने का तौलिया (क्योंकि पेपर टावल रखना उन्हें पर्यावरण के सिद्धान्तों के विरुद्ध लगता है), एटलस, कुछ नक्शे, कुछ नए पुराने बिल। पास ही छोटी टेबुल पर लैपटॉप, अमेरिका की मैग्ज़ीन्स, योग ध्यान की पुस्तकें आदि दिनचर्या की न जानें कितनी चीज़ें।

काम करते-करते जब भी मुझे समय मिलता है मैं हर चीज़ झाड़पोंछ कर करीने से अपनी-अपनी जगह रख देती हूँ। लेकिन धीरे-धीरे सब छूटता जा रहा है। बहुत कोशिश के बाद भी कमरा अस्त-व्यस्त ही लगता है।

अब जब भी कभी रात को अपने कमरे में सोने के लिए आती हूँ तो सोचती हूँ 'वही दृश्य, वही पटकथा। बदले हैं तो केवल पात्र।'

◆◆◆

व्यंग्य

बहुत पहले से उन कदमों की आहट ...

समीर लाल 'समीर' (कैनेडा)

शायद राहू, शनि, मंगल की वक्रदृष्टि के विपरीत, आम आदमी पर सरकार और मंत्रियों की वक्रदृष्टि ज्योतिष पंचाग से आऊट ऑफ सिलेबस हो इसीलिए उन पर यह गीत न लागू होता हो कि बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते हैं...

जगजीत सिंह चित्रा सिंह का गाया 'बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते है...' फिराक गोरखपुरी साहब ने यह गाना जाने कब लिखा, किसके लिए लिखा, क्या सोच के लिखा. किसकी तस्वीर सामने थी ? मगर रचा तो भारत में गया यह तय है क्यूँकि हमने सुना भी पहली बार वहीं और फिराक साहब रहते भी वहीं थे. यूँ भी उस समय आज की तरह, जैसा कि मुझ जैसे लोग कर रहे हैं, भारत की समस्याओं पर भारत के बाहर बैठे कर भारतीयों के द्वारा लिखने का फैशन नहीं आया था.

खैर, बात चल रही है गाने की 'बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते है...'

गौरवशाली भविष्यवक्ताओं के महान देश में तो यह मुमकिन हमेशा ही है कि बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लो.

अगले माह मंगल पर शनि की वक्र दृष्टि रहेगी, व्यापार में घाटा पड़ेगा. लो जान ली पहले से उन कदमों की आहट जो अगले महीने आने वाले हैं.

कई तो इन सब भविष्यवाणियों का गणित भी नहीं समझते मगर इस ब्रह्म एवं गूढ़ ज्ञान के अभाव के बावजूद भी आत्मविश्वास का स्तर ऐसा कि वो अपनी बात यहीं से शुरू करते हैं कि अरे, हम तो आपको गारंटी करते हैं कि इस बार बीजेपी सत्ता में आ रही है. न आये तो कहना, जो कहोगे सो हार जायेंगे. अब बीजेपी न आये तो क्या कहें और उनके पास है क्या जो हारेंगे ? जहाँ खड़े होकर घोषणा कर रहे हैं उस पान वाले का तो चार महिने का उधार चुका नहीं पा रहे और बात करेंगे कि जो कहो, सो हारे. उनका आत्मविश्वास देख कर कई बार घबराहट होती है मगर ऐसे आत्म विश्वासी हर पान ठेले पर मिल जायेंगे.

मुझे कई बार सही भी लगता है कि बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते हैं... जब अपने देश की पुलिस के बारे में सोचता हूँ.

कोई मर्डर कब होना है ? कौन करेगा ? किसका होना है ? चोरी कहाँ होगी ? कौन करेगा ? सब पुलिस बहुत पहले से जानती है. मगर अफसोस, यह गाना यहीं खत्म हो जाता है इसलिए शायद वो बाद में नहीं जान पाते कि अपराधी कहाँ गया ? बेचारे ढूंढते रह जाते हैं और अपराधी कभी मिलता नहीं.

काश, कोई लिखता कि तू छिपा है कहाँ ये भी हम जान लेते हैं ! तो पुलिस को कितनी सुविधा हो जाती.

मगर लिखने वाले... धत्त, बस इतना लिख कर गुजर लिए और भुगतान देने खड़ा है पूरा भारत देश.

अब देखिये, भविष्यवक्ताओं के ऐसे देश में जहाँ यह गीत लब लब गुनगुनाया जाता हो कि बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते हैं... उस देश में भला देश के तयशुदा भावी प्रधानमंत्री... जो कि युवा शक्ति का नेतृत्व करता हो और जिसे प्रधानमंत्रित्व का विरासती अधिकार हो, उसके कदमों की आहट न जानें. उनका नाम लेना उचित न होगा. हमारे कदम भी तो आहट करते हैं, कहीं वो इनको जान न लें.

ऐसा युवा भावी प्रधानमंत्री एकाएक गांवों की हालत और ग्रमीणों की जीवनशैली को जानने की जिज्ञासा लिए एक गांव में अपना हेलिकॉप्टर उतरवा देता है. इस एकाएक और आकस्मिक दौरे के लिए वो गाँव भी और उसका पूरा प्रशासन विगत दो माह से तैयारी में जुटा है. हेलीपैड भी इस आकस्मिक दौरे के तैयार है और जिस गरीब की कुटिया में भईया जी ठहरेंगे वो भी और साथ है पूरा तंत्र भी. पूरे दिन में एक घंटे को बिजली के लिए आदिकाल से तरसते

इस गांव में उनके आकस्मिक प्रवास के दौरान अचानक पूरे समय बिजली रहती है और उस कुटिया में पोर्टेबल एसी से ठंडाई ताकि भईया जी मूंझ की खटिया पर बिछे डनलप के गद्दे पर एक रात सो सकें. चूल्हे पर ग्रामीण द्वारा बना, पीएम लैब से चखने के बाद एप्रूव, खाना खाकर ग्रामीण की हालत की पहचान करने के बाद उस पर संसद में एक घंटे का मार्मिक भाषण दे सकें, भला ऐसे अमर गीतों के बिना कैसे संभव हो पाता कि बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते हैं...

जाने कब रच गये फिराक साहब... ऐसा गीत! काश मैं रच पाता. अमर हो जाता. कालजयी कहलाता.

कल अखबार में पढ़ता था कि कॉमनवेल्थ खेलों में आने वाले विदेशी अतिथि और खिलाड़ी शौकीन मिजाज हैं अत: भारत में गैर कानूनी ही सही (मगर वो भी धड़ल्ले से धंधा कर लेते है क्यूँकि उन्हें भी पहले से पुलिस से ही पता होता है कब पुलिस का छापा पड़ने वाला है. याने वो भी बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते हैं... उन्हें गाना आता है) मगर दिल्ली के कोठों की सबकी सहमति से साज सज्जा, फेस लिफ्ट, एयर कन्डिशनिंग आदि की जा रही है, भले ही हमारे जो खिलाड़ी खेलने वाले हैं, वो आज लॉज का पैसा खुद की जेब से भर पसीना बहाते न सिर्फ प्रेक्टिस कर रहे हैं बल्कि गर्मी से और मच्छरों से जूझते सो भी रहे हैं और सस्ते रेस्टॉरेन्ट की तलाश में पैदल भी चल रहे हैं.

उन्हें जितना दैनिक भत्ता मिल रहा है उसमें न तो एसी रूम लिया जा सकता है, न ढंग का रेस्टॉरेन्ट और न ही सस्ते रेस्टॉरेन्ट तक पहुँचने की टैक्सी. वो भी तो आहट सुन रहे हैं उन कदमों की, जो विदेशों से आने वाले हैं. जाने कैसे हमारे खिलाड़ियों के कदमों में आहट क्यूँ नहीं ? शायद इसीलिए हार जाते होंगे चूँकि बिना आहट के चलते हैं भारत के एक आम आदमी की तरह जिसके कदमों में कोई आहट ही नहीं, जो सरकार भले पहले से नहीं, मगर कभी तो सुन पाती. मुझे लगता है कि हमारे खिलाड़ियों को खेल का रियाज़ करने से ज्यादा अपने कदमों से ऐसे चलने का रियाज़ करना चाहिये कि आहट हो और सरकार जान पाये.

शायद राहू, शनि, मंगल की वक्रदृष्टि के विपरीत, आम आदमी पर सरकार और मंत्रियों की वक्रदृष्टि ज्योतिष पंचाग से आऊट ऑफ सिलेबस हो इसीलिए उन पर यह गीत न लागू होता हो कि बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते हैं...

एक अंतरंग खबर यह भी है कि बम्बई, पुणे, बेंगलौर, कलकत्ता, मद्रास जैसे महानगरों की कालगर्ल्स कॉमन वेल्थ गेम्स के समय स्थानीय ग्राहकों के लिए उपलब्ध नहीं हैं. वो भी विदेशी कदमों की आहट जान गई हैं. डॉलर रूपी घुंघरू बँधे कदमों की आहट छन छन बोलती है न... वो ही बहुत पहले से और दूर से ही सुन रही होंगी.

इसी डॉलर घुंघरू ने तो भारत का ब्रेन ड्रेन कर डाला और हम उनकी आहट सुन कर मुग्ध हुए अपने कोठे ठीक कराने में लगे हैं.

इसीलिए तो मेरा भारत महान. जहाँ का हर नेता पहलवान. बस गीत गाना आना चाहिये कि : बहुत पहले से उन कदमों की आहट जान लेते हैं... ◆◆◆

व्यंग्य

महानता का दौर

✍ प्रेम जनमेजय, भारत

आजकल तो जेब में माल हो तो जो चाहे बाजार से खरीद लो। जेब में पैसा होना चाहिए, माल बेचने वाले हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। जेब में पैसा हो तो छोटा-मोटा जुर्म कर लो, पुलिस भी कुछ कहने से घबराती है। पिछवाड़े पर डंडे तो गरीबों के पड़ते हैं। अब राधेलाल गरीब तो है नहीं, इतना पैसा होने के बावजूद महान न हो सकेगा तो यह देश रसातल में जाएगा ही।

इन दिनों महानता का दौर चल रहा है। प्रतिदिन कोई न कोई महान हो रहा है। महानता का प्याला लबलबा रहा है। चारों ओर महानता छलक रही है। आपको पता ही नहीं चलता है कि आप कितने महान लोगों से घिरे हैं। आप सुबह उठते हैं तो अखबार बताता है कि अपने जिस पड़ोसी को आप घोंचू समझते थे, दो कौड़ी भी नहीं मानते थे, वो तो साला महान हो गया है। जिसे आप चुटकलेबाज, गलेबाज, नौटंकीबाज आदि समझते थे, वो तो पद्मश्री निकला। स्लम में रहने वाले जिन कुत्तों को आप कुत्ता समझते थे उन स्लम डॉग को किसी अंग्रेज ने मिलिनियर बना दिया है और आप साले वहीं के वहीं क्लर्क बने बैठे हैं। जिस लड़के को आप नालायक, अनपढ़, गुंडा, फुकरा आदि समझते थे वो आपके इलाके का विधायक बन गया है और मोहल्ले के समझदार उसके चरणों में कमल ढूंढ रहे हैं। चारों ओर इस तरह से महानता लबलबा रही हो तो किसका मन नहीं चाहेगा कि वो महान न बने। जब अंटी में करोड़ों का माल हो और आप समाज में महान न बन पाएं तो... बहुत नाइनसापफी है न?

आजकल तो जेब में माल हो तो जो चाहे बाजार से खरीद लो। जेब में पैसा होना चाहिए, माल बेचने वाले हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। जेब में पैसा हो तो छोटा-मोटा जुर्म कर लो, पुलिस भी कुछ कहने से घबराती है। पिछवाड़े पर डंडे तो गरीबों के पड़ते हैं। अब राधेलाल गरीब तो है नहीं, इतना पैसा होने के बावजूद महान न हो सकेगा तो यह देश रसातल में जाएगा ही।

राधेलाल ने सुबह का अखबार पढ़ा तो पता चला कि सरकार ने कल रात अनेक लोगों को महान कर दिया। ऐसे-ऐसे लोगों को महान कर दिया जिनके पास पांच सितारा होटल जाने की औकात नहीं है। महात्मा बुद्ध आधी रात को सच की खोज में निकले थे पर राधेलाल सुबह ही महानता की खोज में निकल पड़ा। जिस समाज में सब बिकाऊ है उसमें महानता भी जरूर बिकती होगी। कहाँ बिकती होगी, इसका पता कौन बताएगा? राधेलाल एक कंसेलटेंट के पास चला गया। पिछड़े जमाने में यदि कोई शंका आ जाए तो गुरू उसका समाधान करता था, आजकल वही काम कंसलटेंट करता है। गुरू का उजाड़-सा आश्रम होता है और कंसेलटेंट का वातानुकूलित चैम्बर होता है।

राधेलाल ने कंसेलटेंट से पूछा- मैं महानता खरीदना चाहता हूं, कहां मिलेगी?

- मेरी फीस बहुत हाई है, आप दे पाएंगे, क्योंकि शक्ल से तो आप...

- मेरी शक्ल पे मत जाओ जनाब जी! ये

गरीबी की शक्ल तो मैंने जानबूझकर बना रखी है। अमीर वाली शक्ल बनाओ तो डॉन के एजेंट हफ्ता लेने आ जाते हैं... महानता पर पैसा लगाने को अपने पास बहुत है... बस आप तो ये बताओ की मन्ने महानता किस जगह मिलेगी... किसी मॉल पे... ?

- मॉल पर तो ब्रेंडेड महानता मिलती हैं...

- ब्रेंडेड मतलब ?

- फॉरेन से आई हुई, किसी जोरदार कंपनी की, जो बहुत महंगी होती हैं। ये महानता तो सेल पर भी महंगी होती हैं।

- अरे अपने पास बहोत पैसा है, महंगी की आप चिंता मत करो... हमें तो इम्पोर्टेड महानता ही दिलवा दो।

- पर ब्रेंडेड महानता आप पर सूट नहीं करेगी ?

- सूट मतलब ?

- जैसे आप गरीब दिखने के लिए दाढ़ी बढ़ाकर रखते हो, सूट नहीं पहनते हो, मैली कुचैली धोती पहनते हो... ऐसे मेकअप पर देसी महानता, महात्मा गांधी जैसी, ही सूट करेगी। आप गरीबों के मसीहा होंगे नहीं पर लोग आपको समझेंगे।

- इस महानता को खरीदने के बाद मेरा फोटो खिंचेगा, अखबार में छपेगा ?

- कई अखबारों में छपेगा।

- तो दिलवा दो ये महानता और दो चार दिन में मेरा फोटो भी छपवा दो। मेरे मोहल्ले को पता तो चले उनके पड़ोस में कौन महान आदमी रहता था। और महानता ऐसी हो कि पद्मश्री वाले के पिछवाड़े से धुआँ निकलने लगे।

- ऐसी महानता मिलने में टाईम लगता है और पैसा भी उतना खर्च होता है जैसे किसी कैंसर के मरीज का होता है।

- कितना टाईम लगता है ?

- दो-तीन साल तो लग ही जाते हैं। आपको अगर जल्दी है तो अभी छोटी-मोटी महानता से काम चला लो। महान बनना ठीक लगे, उसमें मजा आवे तो और इन्वेसट कर देना। इसमें तो जितना गुड़ डालोगे उतना ही मीठा होगा।

- ये छोटी-मोटी महानता कैसी होगी ?

- आपके शहर में एक गरीबों के कल्याण के लिए एक बहुत बड़ा जलसा हो रहा है जिसमें मंत्री और हो सकता है मुख्यमंत्री आ जाएं। तीन-चार करोड़ का खर्चा है। आपने अगर ठीक-ठाक इन्वेस्ट किया तो आपको स्वागताध्यक्ष बना देंगे और आपसे मंत्री जी या मुख्यमंत्री का स्वागत करवा देंगे। घोषणा करवा देंगे कि गरीबों के इस नेता ने पचास लाख का दान किया है।

- पचास लाख देने में कुछ न है, पर ये रकम सुनकर माफिया मेरे पीछे पड़ गया तो... ?

- अरे, इतने नासमझ हो क्या ? इतना भी नहीं जानते कि मंत्री को माला पहनाने से और उनको दान देने से कोई आपको हाथ लगाने की हिम्मत नहीं कर सकता। एक मोहल्ले का गुंडा दूसरे मोहल्ले की ओर झांकता तक नहीं है। जेबकतरे तक दूसरे के इलाके में नही जाते हैं।

- ये तो एक पंथ दो काज हो गए... महानता भी मिल गई और डॉन से भी छुटकारा मिल गया। आप तो अब जल्दी से हमें महानता दिलवा ही दो।

कुछ दिनों बाद राधेलाल महान हो गया और मेरा भारत भी महान हो गया। ◆◆◆

कविता

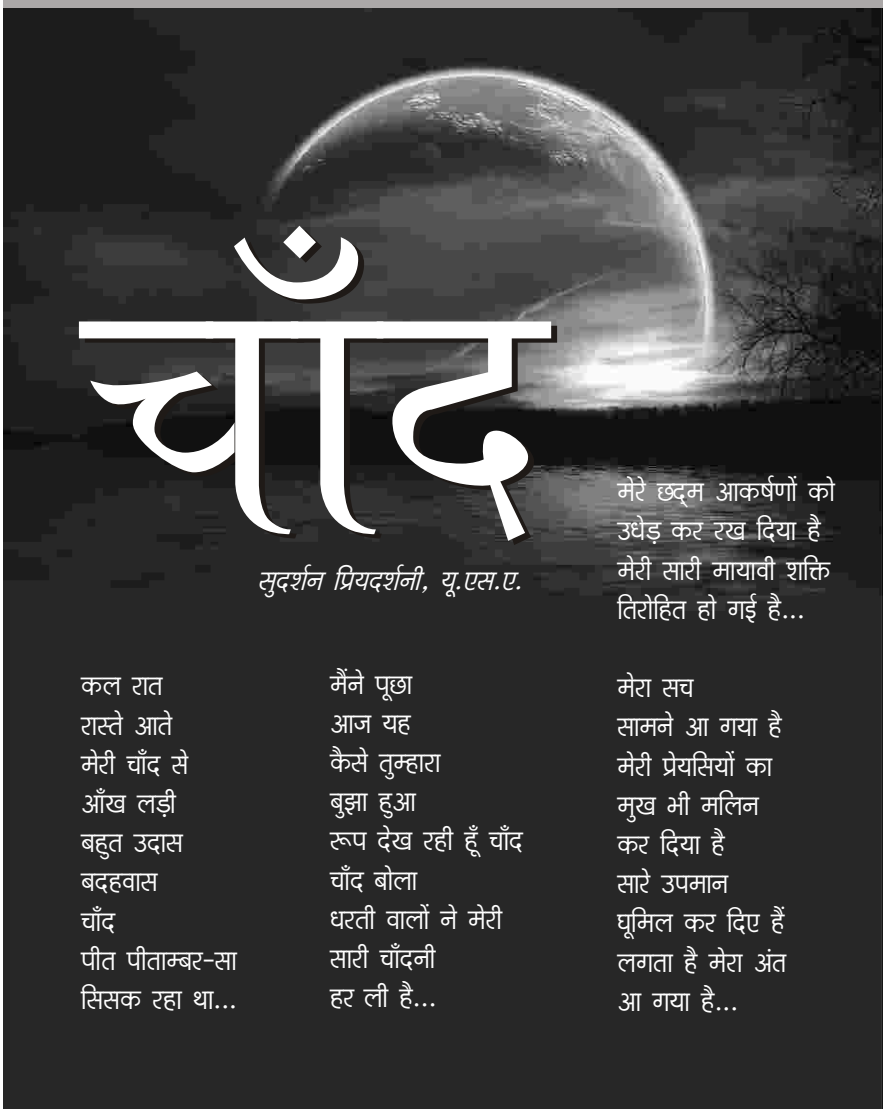

चाँद

सुदर्शन प्रियदर्शनी, यू.एस.ए.

कल रात
रास्ते आते
मेरी चाँद से
आँख लड़ी
बहुत उदास
बदहवास
चाँद
पीत पीताम्बर-सा
सिसक रहा था...

मैंने पूछा
आज यह
कैसे तुम्हारा
बुझा हुआ
रूप देख रही हूँ चाँद
चाँद बोला
धरती वालों ने मेरी
सारी चाँदनी
हर ली है...

मेरे छद्म आकर्षणों को
उधेड़ कर रख दिया है
मेरी सारी मायावी शक्ति
तिरोहित हो गई है...

मेरा सच
सामने आ गया है
मेरी प्रेयसियों का
मुख भी मलिन
कर दिया है
सारे उपमान
घूमिल कर दिए हैं
लगता है मेरा अंत
आ गया है...

ललित निबंध

दर्द क्लब

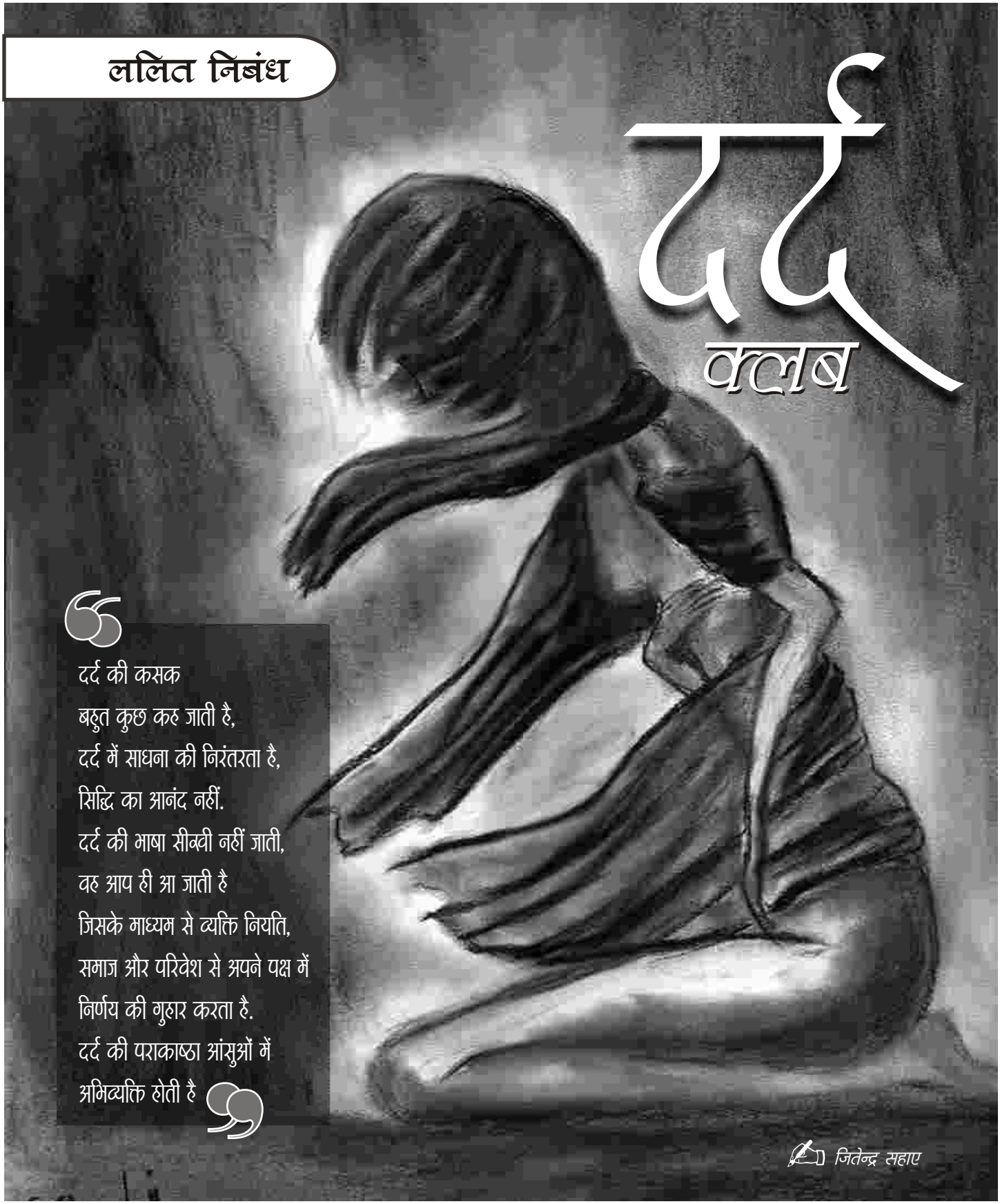

दर्द की कसक
बहुत कुछ कह जाती है,
दर्द में साधना की निरंतरता है,
सिद्धि का आनंद नहीं.
दर्द की भाषा सीखी नहीं जाती,
वह आप ही आ जाती है
जिसके माध्यम से व्यक्ति नियति,
समाज और परिवेश से अपने पक्ष में
निर्णय की गुहार करता है.
दर्द की पराकाष्ठा आंसुओं में
अभिव्यक्ति होती है

जितेन्द्र सहाए

शहर में कई 'लाफ्टर क्लब' खुले तो प्रेरणा हुई कि दर्द-क्लब की भी स्थापना हो. विज्ञापन होते ही प्रविष्टियाँ इतनी आयीं कि आवेदनों की छंटनी की समस्या खड़ी हो गई. यह बात घर कर गई कि दर्द सर्वविदित, सर्वविद्यमान, सार्वकालिक, सर्वमान्य मूल तत्व है, किन्तु दर्द इतना भी सुलभ नहीं कि सभी को प्राप्य हो, वह तो विरलों को ही गले लगाता है. बिना दर्द का अनुभव किये सर्जन नहीं, सृष्टि नहीं, संगीत नहीं, सम्वेदना नहीं, न जीवन की सार्थकता. दर्द की गिनती भावुक लोगों में अच्छे गुणों में होती है, जो अनेक को नसीब नहीं, तभी तो 'दिनकर' जी ने यह फतवा दिया है ---- *'वेदना गोद में उठाकर सबको निहाल नहीं करती, जिनका पुण्य प्रबल होता है, वही अपने आँसुओं से धुलता है.'*

बहरहाल दर्द-क्लब के गठन के साथ दर्द की महत्ता को लोग समझने लगे. दर्द की भाषा विश्वभाषा बन सकती है, जिसे बिना पढ़े-लिखे लोग भी समझ पाते हैं तथा दर्द में कष्ट सहने कि दृढ़ता के साथ कर्म में प्रवृत्त होने का उत्साह भी बनता है. कर्म-सौन्दर्य के पक्षधर ही वास्तव में सच्चे दर्ददिल हैं. दर्द-वैज्ञानिकों से जुडाव तथा दर्द के शोधार्थियों के परिश्रम से दर्द की सच्ची अनुभूति उन लोगों में भी हो गई जिसे लोग संगेदिल या दिलफरेब कहते रहे. दर्दनाक परिस्थितिओं में भी धैर्य, साहस और संतोष दर्द-क्लब के सदस्यों के लिए बड़े मूल्यवान शब्द समझे गए. नतीजतन इस क्लब के 'गाइड लाइन' के रूप में कई शायरों और कवियों की उन उक्तियों को समाहित किया गया जो दर्द को महिमामंडित करती है. मिर्जा ग़ालिब जो इस क्लब के प्रमुख संयोजक बनाये जा सकते थे उनके ये अल्फज सबके दिल में उतर गए--- *'इशरते कतरा है, दरिया में फना हो जाना, दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना.'*

सौभाग्य की मंजूषा रीती न रह जाए इसलिए 'वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास' कहनेवाली दु:ख-दर्द की कवियित्री महादेवी वर्मा का यह उद्गार क्लब का संदेश बन गया---- *'मैं नीर भरी दु:ख की बदली, परिचय इतना इतिहास यही, उमड़ी कल थी मिट आज चली.'*

एक फ़िल्मी गीत की चर्चा इस क्लब में नवयुवकों को आह्वान करने के लिए भी की गई--- *'दर्द दिल के वास्ते पैदा किया इन्सान ने.'*

जयशंकर प्रसाद के पीड़ा सम्बन्धी विचार का लोगों ने तहेदिल से स्वागत नहीं किया, क्योंकि इन्होंने दर्द को दुर्दिन से जोड़ दिया है. आपकी जानकारी के लिए उनकी पंक्तियों को उद्धृत कर रहा हूँ--- *'जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक में स्मृति-सी छायी, दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आयी.'*

कवि रहीम जो मन की व्यथा मन ही में रखकर उसका स्वाद लेना चाहते हैं, लोगों के बीच विवाद के कारण बने. उनके पक्षधरों ने कहा कि दर्द को बाँटा तो जा सकता है, किन्तु उसके लिए सही पात्र न मिलने से उस समय कि परिस्थितिओं पर ध्यान देते हुए यह दोहा उन्होंने लिखा था---- *रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही रखो गोय, सुनी इठलैहे लोग सब, बाँटी न लैहैं कोय.'*

दर्द-क्लब के सदस्य तो दर्द की दरिया में डुबकियाँ लगाना चाहते हैं. उन्हें तो दूसरों की व्यथा सुननी है, अपनी पीड़ा बाँटनी है तथा अनेक के दु:ख-दर्द बटोरने हैं. जब तक पीड़ा का लगाव किसी क्रिया, व्यवहार या उसकी भावना के साथ नहीं जुड़ा है, तब तक उसे हम दर्द नहीं कह सकते. क्या जिगर का दर्द बिना किसी संवाद के परखा जा सकता है? पश्चिमीकरण के प्रभाव में हम कृत्रिम आचरण कर बैठते हैं. किसी के अप्रसन्न होते हुए भी मिलने पर कहते हैं, *'ग्लैड टू मीट यू'* पर इस क्लब के सदस्य दूसरे आफतजदा दोस्तों से मिलकर उसके दर्द को सहलाते हैं और कुछ इस तरह कहते हैं--- *'पाल ले एक दर्द दाना जिन्दिगी के वास्ते, सिर्फ खुशियों के सहारे ज़िन्दगी कटती नहीं.'*

इस क्लब ने दर्द के विभिन्न पहलुओं को नए सिरे से खोला है, उनको नए आयाम दिए हैं. आइये कुछ सारगर्भित तथ्यों को उजागर किया जाए. वास्तव में भ्रूण से जन्मा मनुष्य दर्द की परतों में ही विकसित होता है, जिससे दर्द ही उसकी प्रिय और लोकसम्मत थाती बनती है. आप किसी उत्सव या उत्साह में पूरे मन से शरीक नहीं भी हो सकते, क्योंकि ईर्ष्या, स्वाभिमान, अहंकार आदि प्रवृतियाँ बाधक बन जाती हैं, किन्तु दर्द का माहौल कुछ ऐसा होता है कि वह स्वाभाविक रूप से आपको झकझोरता है और आप हमदर्द बन जाते हैं. जैसा कि रेशम का कीड़ा अपने चारों ओर एक घेरा तैयार करता है, मकड़ी बारीक रेशों का ताना-बाना बुनकर एक संसार बना लेती है, उसी तरह हम लोग अपनी संवेदनाओं के जाल में उलझकर एक अनिवर्चनीय आनन्द का अनुभव करते है ओर दर्द के दायरे में अपने को घिरा पाते हैं. प्रत्यक्ष प्रमाण तब मिलता है जब हम किसी को दर्द में डूबा देखकर उसे अत्यंत करीब पाते हैं. वास्तव में वह व्यक्ति हमारे करीब नहीं आता उसका दर्द हमारे भीतर उपस्थित चिरस्थायी, सनातन दर्द को पहचान लेता है. अत: दर्द का सूत्र अनेक को जोड़ देता है.

तुलसीदासकृत रामचरितमानस की ख्याति इसलिए है कि सारा महाकाव्य लोकाराधन है. जनसाधारण की पीड़ा, क्लेश, संताप, यातना और दु:ख-दर्द का यह आख्यान मानवीय संवेदना का जीवंत दस्तावेज है. दशरथ से श्रीराम का विछोह, श्रीसीता से श्रीराम का वियोग, राम-वनगमन के पश्चात् भरत का रुदन-क्रन्दन ये सारी घटनाएँ दर्द बनकर पाठकों के मानस पर छा जाती हैं, जिसके कारण यह महाकाव्य 'रामचरितमानस' कहलाया. महर्षि वाल्मीकि के मुख से निकला अनुष्टुप छंद क्रोंच-वध से उत्पन्न दर्द की ही अभिव्यक्ति है----- *'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः, यत क्रोंच मिथुनादेकम वधीः काममोहितम.'*

महाभारत-युद्ध के विनास और विध्वंश-लीला की आशंका से उत्पन्न दर्द का ही प्रतिफल श्रीकृष्ण के मुख से निकली श्रीमद्भगवतगीता के श्लोक हैं, जिनमें भारतीय दर्शन के गूढ़ तत्व हमें दृष्टिगत होते हैं प्रसादान्त नाट्य-परंपरा की लम्बी अवधि के बाद जब दुखांत नाटक मंच पर

प्रदर्शित होने लगे तो लोगों का आकर्षण नाटकों की ओर बढ़ा. संगम-युग के तमिल-साहित्य के प्रमुख महाकाव्यों में दर्द की मूल भावना सर्वत्र व्याप्त है.

विभिन्न धर्मों के धर्म-प्रचारक ने दर्द के मर्म को डंके की चोट पर प्रस्तावित किया. 'क्राइस्ट' ने 'क्रूस' पर चढ़कर हाथों और पैरों में कील ठुकवाई और सिद्ध किया कि नश्वर जीवन का मूल स्वाभाव दर्द है---दर्द ही धर्म है और धर्म ही दर्द है. इस्लाम ने कहीं दर्द को त्यौहार के रूप में प्रस्तुत किया और मातमपुरसी को सजदे से जोड़कर लोगों को अचम्भे में डाल दिया. छाती ठोककर दर्द को उजागर करने का अध्यात्म का मार्ग, नुकीली धारों से शरीर को छलनी करने की मोक्ष की विधि तथा अंगारों पर चलकर पैरों में छाले पड़वा देने को ईश्वर-संपर्क की कड़ी, धर्मानुकूल माने गए. ऋषि-मुनियों की तपस्या में भी कहीं-न कहीं दर्द की अवधारणा है.

लोग संस्कृति में तो दर्द की भूमिका और भी उपजाऊ है. लोकगीत-संगीत और नाटक परम्पराओं में विरह की वेदना सबसे अधिक प्रश्रय पाती है. श्रीचैतन्य महाप्रभु ने बंगाल से उड़ीसा तक स्वयं को राधा-रूप मानकर श्रीकृष्ण के वियोग में जो दर्द भरे संगीत की लहर फैलाई, वह मुक्ति का मार्ग बताया गया. मध्यकाल में कई राग-रागनियों का जन्म दर्द की कोख में हुआ, जो भारत की समेकित संस्कृति को बल देती है. भारतीय संगीत ऐसे भी अपने प्रभाव में मूलतः दर्द भरा ही है और उद्वेलित हृदय को शांति प्रदान करता है.

उर्दू साहित्य से हिंदी में ग़ज़ल का आयात हुआ तथा यह विद्या आज बहुत लोकप्रिय है. पंकज उधास, अताउल्लाह खां, जगजीत सिंह, चित्रा सिंह जैसे फनकार, गजलों में दर्द बयाँ करके हिंदुस्तान की जनता के दिल मोह लिए हैं. सन बासठ की चीन के हाथों हुई हार के बाद लता मंगेशकर का कोकिल स्वर जब पराजय के दर्द को 'ऐ मेरे वतन के लोगों! जरा आँख में भर लो पानी' कहकर अभिव्यक्ति किया तो तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू की आँखें सजल हो उठी थीं. किन्तु सन-बहत्तर की पाकिस्तान-विजय का उत्साह या प्रसन्नता इस तरह का कोई अमर गीत नहीं दे सकी. काव्य या सार्थक संगीत का सर्जन किसी गहरे दर्द से ही प्रेरित होता है, जो सर्वमान्य है---- *'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान.'* सुख और प्रसन्नता कभी भी अमर-कला की जननी नहीं होती. किसी भी रचनाकार के लिए दर्द उसका रचना-स्रोत और रचना-प्रकिया दोनों हैं.

चिकित्सा-जगत भी दर्द की साँसों में जीता है. बदन का दर्द, सिर का दर्द, पैर का दर्द, कमर का दर्द, प्रसव का दर्द रोजमर्रे की शिकायतें हैं. शल्य-क्रिया के सम्पादन में दर्द अवश्यंभावी 'बाई-प्रोडक्ट' है, जिसके कारण 'एनेस्थिसिया' का आविर्भाव हुआ. प्राचीनकाल में शल्य-क्रिया होती थी, पर उस समय की जीवन-शैली योग-प्राणायाम पर आधारित थी. दर्द उत्पन्न करने वाले स्नायुतंत्र का ज्ञान योग-अभ्यासियों को था, जिसके कारण दर्द को वे वशीभूत कर लेते थे. इस शताब्दी में योग-निद्रा में ऑपरेशन सम्पन्न किये जाने के दृष्टान्त हैं. बालगंगाधर तिलक ने 'एपेंदिस्सैतिस' का ऑपरेशन योग निद्रा में करा किया था. अब ऐसे योगी लुप्त हो गए तथा सूक्ष्म स्नायु-तंतुओं की गहन खोज शायद वैज्ञानिक करते भी नहीं. विज्ञान के विकास के साथ 'एनेस्थिसिया' के विभिन्न तरीके भी विकासित हुए, जो शल्य-क्रिया को दर्दहीन बना देते हैं, पर जीवन की जटिलताओं, तनावों और उलझनों में लिप्त मनुष्य आज दर्द के लिये जागता है और दर्द के लिए सोता है.

घर फूँक तमाशा देखने वाले लैला-मजनू, हीर-राँझा, शीरी-फरहाद तथा रोमिओ-जूलियट की प्रेम-गाथाएं दर्द को अमरता देती हैं तथा इश्क की तौहीन करने वाले के लिए चुनौती है. मोहब्बत का चिराग रौशन करने को कृतसंकल्प प्रेमी युगल दर्द के चलचित्र हैं, जहाँ कहीं हताशा है, कहीं बेचैनी है, कहीं विश्वासघात है, कहीं आँसू है और कहीं द्वंद्व-अंतर्द्वंद. सम्बन्धी, सहकर्मी, मित्र, विरोधी जब उनके दर्द पर हँसते हैं वे असहाय, निरुपाय, बेचारापन की स्थिति में पड़कर भी अपने प्रयोग में दर्द के सहारे ही अपराजेय बने रहते हैं. दर्द की कसक बहुत कुछ कह जाती है, दर्द में साधना की निरंतरता है, सिद्धि का आनंद नहीं. दर्द की भाषा सीखी नहीं जाती, वह आप ही आ जाती है जिसके माध्यम से व्यक्ति नियति, समाज और परिवेश से अपने पक्ष में निर्णय की गुहार करता है. दर्द की पराकाष्ठा आंसुओं में अभिव्यक्ति होती है जिसे अध्यात्मवादी ईश्वर-प्राप्ति का एकमात्र मार्ग जानते हैं, मनोवैज्ञानिक विरेचन का कारण, साहित्यकार आत्मा की पुकार, समाजशास्त्री अव्यवस्था का अभिशाप. नारी-समाज में उन्हीं के हित में लिखी गई गुप्त जी की निम्न पंक्तियों को 'विमेंस लिव' के आन्दोलन ने आज ख़ारिज कर दिया है, किन्तु वास्तव में यही उनकी शक्ति है जिसके आधार पर वह फरियाद करती है- *'अबला जीवन हाय तुम्हरी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी.'*

शेक्सपीयर का यह कथन बड़ा मर्मस्पर्शक है जो दर्ददिल को आज भी बड़ा सुकून देता है--- तुमने आँखों में आँसुओं के जो तरल बिंदु बहाए हैं, वे लौटेगें, मोती बनकर लौटेगें, ब्याज-सहित लौटेंगे. अतः दर्द क्लब का सदस्य बनने पर दर्द बढ़ेगा नहीं, घटेगा, यही इस क्लब की विशेषता है.

क्या दर्द से कभी छुटकारा है? वेदना, विपदा, घात-प्रतिघात, दुःस्वप्न, निराशाओं के बीच झूलता जीवन हँसी में भी रोता है, सुख में भी दुखी और पुरुषार्थ में भी हरा हुआ है. बौद्ध-दर्शन के चार आर्य सत्य की (एक) दुःख है, (दो) दुःख के कारण हैं, (तीन) दुःख दूर किये जा सकते हैं (चार) दुःख दूर करने के लिये प्रयत्नशील हों तथा मीरा का यह आत्मघोष-- 'हे री! मैं तो दर्द दीवानी', इसके साक्षी है.

यहाँ एक बात स्पष्ट कर दूँ कि दर्द का उपर्युक्त विवेचन और विधान सच्चे दर्दियों के लिए है, छद्म दर्दियों के लिए नहीं, जिनके दरवाजे से दर्द दस्तक दिए बिना उल्टे पांव लौट आता है. सच्चे दर्दी तो वही है जो बुद्ध के चार आर्य-सत्यों की परिणिति *'चरथ भिक्खवे चारिकं, बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय, या फिर चरैवती चरैवती'* के कर्मसत्य को स्वीकार करने

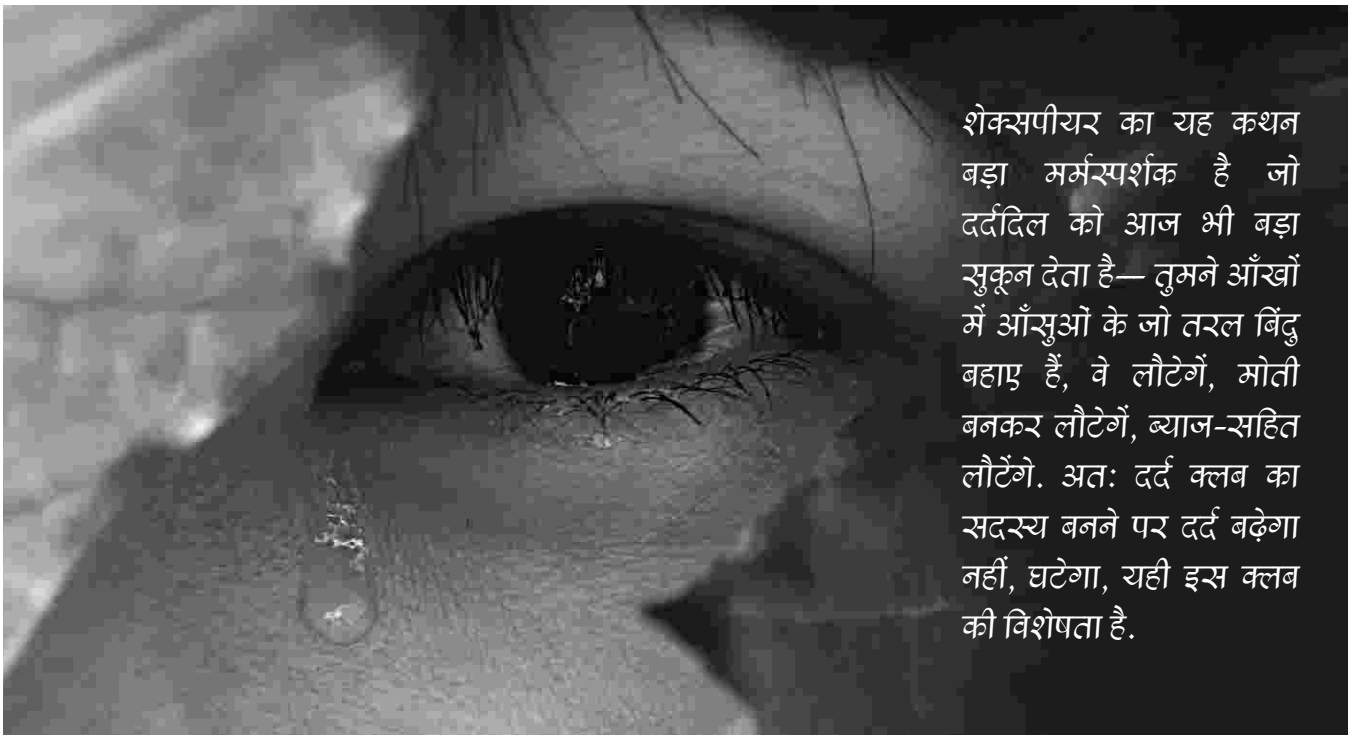

में समर्थ हों. मीरा ने भी 'एकला चलो' की चिंतन कर्मशीलता की ओर ही संकेत किया है, यह कहकर कि 'मेरा दर्द न जाने कोय'. विद्रोहिणी मीरा को इसकी चिंता भी कहाँ है कि लोग उसके दर्द को जानें. गरज यह है कि दर्द-क्लब के सदस्य वे ही हो सकते हैं जो सच्चे दर्दी हों---- *'वैष्णव जन तो तेणे कहिये पीर परायी जत्पै रे'* के तर्ज पर जिनकी सोच है. इसलिए 'दर्द-क्लब' के विज्ञापन पर आये ढेर सारे आवेदकों में से सच्चे दर्दियों की पहचान करना मुश्किल जरूर है, पर असंभव नहीं. उन आवेदकों में से हम ठलुए और घलुय छदम दर्दियों को छांटने में फिलहाल व्यस्त हैं. सच्चे दर्दियों का चयन कर हम उन्हें सादर सदस्यता प्रदान करेगें. अत: जिन्हें हमारा आमन्त्रण नहीं मिले, वे अपने को ठलुय और घलुय दर्दी समझकर कोई पत्रावर नहीं करेगें क्योंकि हमारा निर्णय निर्णायक एवं अंतिम होगा तथा अपने चुनाव में हम किसी प्रकार का संशोधन नहीं करेंगे. आवेदकों की सुविधा के लिए 'ठलुए' और 'घलुए' दर्दियों की सुविचारित पहचान की सूची दी जा रही है, जो प्रस्तावित है अंतिम नहीं :

ठलुए दर्दी : बीबी से पिटे, शहर के अंदेशे से दुबले, हर बात पर सशंकित रहनेवाले, हार बात पर मुँह बिचकाने वाले लोग, मालपुए खाकर गरीबी पर बहस करने वाले लोग, एयरकंडीशन में बैठकर गरीबी-की रेखा पर आँसू बहाने वाले, सवा रुपए के लड्डू चढ़ाकर करोड़ों की चपत लगाने वाले, घूस-बेईमानी, भ्रष्टाचार, कदाचार के कारण उड़ी है नीद जिनकी, विभिन्न मुद्दों पर घड़ियाली आँसू बहाने वाले आदि-आदि.

घलुए दर्दी : जन सेवा के नाम पर सुरा-सुंदरी में डूबे लोग, विधानसभा और संसद में घमासान करके भी बिगड़ती कानून-व्यवस्था पर रोना रोनेवाले, ए.के.४७ रायफल्स थामे अहिंसा का उपदेश देने वाले, सुबह-शाम कपड़े बदलने की तरह आस्थाएं बदलकर अनुशासन-हीनता पर रोने वाले, घोर सांप्रदायिक तुष्टिकरण के पक्षधर होकर भी सांप्रदायिकता के बढ़ाव की चिंता से परेशान लोग, शिक्षा को चौपट करने में सक्रिय शिक्षाविद् जो शिक्षस्तर के गिरने से परेशान हों, घपलेबाज राजनीतिज्ञ जो राजनैतिक अराजकता का रोना रोते हों. अनेकानेक मुखौटों के प्रयोगवादी.

तिप्पनी : ऐसे आवेदकों की संख्या बहुत है, क्योंकि उनका विस्तार, प्रभाव और पहुँच, स्वार्थ तथा कुनबापरस्ती के रास्ते गुटबाजी करके सब कुछ हड़प जाने के तिकड़म तक है- धर्म, राजनीति, समाज आदि क्षेत्रों के तिकड़म-बाज और तिकड़मबाजी के पुरोधा अनंत हैं. सेकुलर, सत्याग्रह, सत्य-अहिंसा, सामाजिक न्याय, गरीबी हटाने आदि के पवित्र संकल्पों की मिट्टी पलीद करने के लिये इनके द्वारा आविष्कृत हथियारों का बड़ा जखीरा मौजूद है, आदि-आदि. इस वर्ग के लोग सही दर्दियों को लालच देकर अपनी जमायत में खींचने के लिए शायद दर्द-क्लब का सदस्य बनना चाहते हैं.

तो बंधुओं! इसके साथ ही दर्द-क्लब की स्थापना की घोषणा की जाती है. इसकी सदस्यता नि:शुल्क है, लेकिन वह सदस्यता निश्चय ही 'सत-शुल्का' है ठीक वैसे ही जैसे सीता 'वीर-शुल्का' थी. कबीर ने भी कहा था कि जो जाग्रत है उसी के पास दर्द और आँसू है; जो सोये हैं उनकी ये नसीब कहाँ!

सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवे,
दुखिया दास कबीर है, जागे अरु रोवे।

◆◆◆

अध्ययन

ज़िन्दा मुहावरे

एक अध्ययन...

डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान

15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हो गया, परन्तु अपने पीछे विषादों से भरा इतिहास छोड़ गया, उसकी छाती पर विभाजन की रेखा खिंच गयी थी। आज़ाद हो जाने की खुशी, टुकड़ों में बंट जाने का ग़म सब ऐसा घुलमिल गया कि हर्ष का संगीत मरघट के सन्नाटों में खो गया था, अजीब-सी नीरवता वातावरण में छा गई थी। भारत को विभाजित करने के पीछे अंग्रेजों की घिनौनी साज़िश थी। अंग्रेजों की कूटनीति से मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस से समझौता न होने के कारण स्वतंत्रता से थोड़ा पहले हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक संघर्षों के परिणाम स्वरूप बिहार, बंगाल आदि में एक सम्प्रदाय के लोग दूसरे सम्प्रदाय के निर्दोष लोगों की हत्यायें कर रहे थे। तभी 3 जून 1947 को अंग्रेजी साम्राज्य के प्रधानमंत्री एटली ने भारत के विभाजन की घोषणा कर दी, जिसके परिणामस्वरूप पूरे देश में आक्रोश की ज्वाला भड़क उठी। मनुष्य मानवता का परित्याग कर बर्बर बन गया। विशेष रूप से पश्चिमी पंजाब के अल्पसंख्यक मुसलमानों के साथ भी बहुसंख्यकों ने दुर्व्यवहार किया। यह नरमेध यज्ञ भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति का बहुत भारी मूल्य था।[1]

विभाजन की इस पीड़ा को गुलामी की दास्ता सह रहा भारतवासी एकाएक सह न सका, अंग्रेजी सत्ता अपने इरादों में कामयाब हो चुकी थी, आज़ादी की सुबह खून के रंगों से सनी आई थी, उसकी चूनर अपनी ही सन्तानों के रक्त से अरुणिम हो गयी थी, लोगों की वेदना मिश्रित चीत्कार वातावरण को कम्पित कर रही थी, सब कुछ हतप्रत कर देने वाला था। पूर्वी भारत के अहमदाबाद, दिल्ली, बम्बई तथा पश्चिमी भारत के अनेक अन्य नगर साम्प्रदायिकता से बच न सके। यही बातें पाकिस्तान में हो रही थी। देश विभाजन के पश्चात् सम्पूर्ण वातावरण में साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठी थी और इस आग में मनुष्य मानवता को खोकर धर्म की संकीर्ण श्रृंखला से आ जुड़ा था। सम्प्रदायवाद को लेकर हिन्दू महासभा तथा मुस्लिम लीग दोनों के नेता भारतीय समाजवाद के पेंदे में धर्म की छेनी से छेद करने लगे, एक हिन्दू राष्ट्र का अलाप करने लगा और दूसरा मुस्लिम राष्ट्र का नारा लगाने लगा। सन् 1930 ई. के बाद पाकिस्तान की माँग उठने लगी थी। द्विराष्ट्र के सिद्धान्त का अनुमोदन 20वीं सदी की चतुर्थ शताब्दी में मुस्लिम लीग ने विधिवत् कर दिया था। एक और अलग राष्ट्र के रूप में पाकिस्तान के समर्थन में नारे लगते थे तो दूसरी ओर एक राष्ट्र के पाकिस्तान मुर्दाबाद,

Ashok Malik

Sales Representative

REALTOR® MLS® MULTIPLE LISTING SERVICE®

NetPlus Realty Sales Inc., *Brokerage*

Independently Canadian Owned & Operated

Office: (416) 287-6888 Direct No: (647) 483-7075

5524A Lawrence Ave. E, Toronto, Ontario M1C 3B2

ashokmalik@rogers.com

Ask us about New Homes and Investment Properties.

THINKING OF SELLING OR BUYING?
FREE MARKET EVALUATION

FULL MLS SERVICE & FULL MARKETING = SOLD!

We Offer:

- No up-front fees
- We advertise your home for free
- We provide attractive yard sign
- Agents show your home by appointments to prospective buyers.
- We negotiate the purchace agreement
- We pre-qualify all buyers
- We help arrange financing and oversee the inspections
- We handle all the paperwork and supervise the closing

Whats's Your Home Worth?
Contact us for a free, no hassle
Market Evaluation of your home

"Bottom Line: "We provide Professional Full Services With local experience & knowledge."

not intended to solicit properties already listed for sale

हिन्दुस्तान ज़िन्दाबाद के नारे से उसका विरोध किया जाता था।[2]

देश में फैली धर्म के नाम पर विभाजन की लहर ने लोगों में असुरक्षा एवं भय भर दिया। अपनी धरती अपने लोगों से जुड़ा मुसलमान अपने अस्तित्व पर लग रहे प्रश्नचिह्न से तड़प उठा। उसका यह अनुभव उसकी आत्मा को घायल कर रहा था कि उसे अपने देशप्रेमी होने के लिए प्रमाण देना होगा अन्यथा उसे देशद्रोही ही समझा जायेगा। अपने ही घर में बेघर होने का अहसास उसके सामने अजीब सी विडम्बना खड़ी कर रहा था। इन्हीं तथ्यों को 'ज़िन्दा मुहावरें' उपन्यास में व्यक्त किया गया है। उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है- ''यह तर्जुबा कितना तकलीफदेह होता है कि जहाँ आप पैदा हों, जिस जमीन को आप अपना वतन समझें, उसे बाकी लोग आप का गलत कब्जा बताएं। कदम-कदम पर यह अहसास दिलाएं कि तुम यहाँ के नहीं बाहर के हो।''[3]

कुछ लोगों की वजह से कुछ मुसलमान खुद ही भ्रमित होकर मुख्यधारा से कटे हुए हैं तो कुछ को भ्रमित किया गया है। इसी तरह से उनके विकास के रास्ते को भी बाधित किया गया। 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास का एक पात्र कहता है कि 'हम तो इसी डर से पढ़ाई की तरफ नहीं बढ़े कि हमारे रास्ते तरक्की करने के बंद हो चुके है।' लेकिन ऐसा सौ प्रतिशत नहीं माना जा सकता है। मुसलमान पूरी निष्ठा के साथ देश-समाज की मुख्यधारा से जुड़ना चाहता है उसे कोई नहीं रोक सकता है क्योंकि भारतीय संविधान ने सबको बराबरी का हक प्रदान किया है।

उपर्युक्त पंक्तियों में लेखिका ने मुस्लिम समाज के अनुभवों को जिस स्तर पर स्पर्श किया है वह स्वतंत्रता के साठ वर्ष बाद भी अनुभव का वही स्तर विद्यमान होकर उपन्यास की, मुस्लिम समाज की भारत में एक महती समस्या से जोड़कर समसामयिक सन्दर्भों में भी उसकी प्रासंगिकता बरकरार रखी है। आज भी मुसलमान अपराधबोध से ग्रस्त बहुसंख्यक द्वारा बनाये गये प्रश्नात्मक चक्रव्यूह में घिरा है।

अपनी धरती अपने लोगों से जुड़ा मुसलमान अपने अस्तित्व पर लग रहे प्रश्नचिह्न से तड़प उठा। उसका यह अनुभव उसकी आत्मा को घायल कर रहा था कि उसे अपने देशप्रेमी होने के लिए प्रमाण देना होगा अन्यथा उसे देशद्रोही ही समझा जायेगा। अपने ही घर में बेघर होने का अहसास उसके सामने अजीब सी विडम्बना खड़ी कर रहा था। इन्हीं तथ्यों को 'ज़िन्दा मुहावरें' उपन्यास में व्यक्त किया गया है।

संकीर्ण मानसिकता से ग्रस्त लोग अपने घटिया विचार व्यक्त करने से नहीं चूकते कि मुसलमान को भारत में रहने का अधिकार नहीं उसे अलग राष्ट्र मिल गया वह जाये। आज भी यही लगता है, अंग्रेजों द्वारा लगायी गयी साम्प्रदायिकता की आग का जीवनकाल कितना लम्बा है और हृदय पर पड़ गई दरारों की खाई पाटना कितना मुश्किल है।

सन् 1947, भारत विभाजन के पश्चात् पूरा देश साम्प्रदायिकता की ज्वाला में झुलस रहा था। आज़ादी की सुबह नफ़रत, उदासी, दंगे साथ लेकर आई थी। बरसों से साथ रहे दोस्तों का दृष्टिकोण भी हिन्दू-मुस्लिम बन गया था, सम्बन्धों को मापने का आधार धर्म, सम्बन्ध जोड़ने का आधार धर्म, पूर्णतः धर्म केन्द्रित मानसिकता को लेकर जी रहा था, स्वतंत्र भारत का समाज। विभाजन के पश्चात् कभी भी भारत पाकिस्तान के आपसी सम्बन्ध ठीक नहीं रह सके।

हमेशा ही टकराव की स्थिति बनी रही है। वर्तमान में भी स्थिति तनावपूर्ण हो गई है ऐसे में भी भारत और पाकिस्तान के मध्य शादी-विवाह जैसे मसले को लेकर सोचना पड़ता है। नासिरा शर्मा के उपन्यास 'ज़िंदा मुहावरे' में ऐसी द्वन्द्वात्मक स्थिति को व्यक्त किया गया है: ''आप इस शहर की हालात देख रहे हैं? ऐसी हालत में अपनी लड़की का हाथ कैसे किसी पाकिस्तानी लड़के के हाथ में थमा दूँ? पहले का लगा दाग धोते-धोते, चालीस-पैंतालिस साल गुज़र गए और फिर यही बात.....।''[5]

मिट्टी से विशेष प्रेम रखने वाले लोगों के लिए अपना देश छूटने की पीड़ा असह्य होती है। माता-पिता अपनी सन्तान के प्रति विशेष मोह एवं प्रेम रखते है। ऐसे में देश से दूर अपने बच्चे को भेजना बहुत कठिन होता है। विशेषकर जब पुत्री के विवाह की बात सामने आती है। ये अलग बात है कि वर्तमान में अपनी सन्तान को बाहर भेज देना आम फैशन हो गया है। बल्कि सामाजिक सम्मान का विषय भी बन गया है। वहाँ देशप्रेम सन्तान प्रेम का भाव समय की प्रवाह में पीछे छूट गया है।

सामाजिक मान्यता यह है कि ज़मीन और घर को भी अपने वारिस से आशाएँ रहती हैं। यह किंवदन्तिया हैं कि सन्तान होने पर घर की दहलीज एक बार काँपती है कि यह मेरी प्रतिष्ठा रख सकेगा अथवा नहीं। आज की पीढ़ी घर परिवार और अपनत्व के भाव से दूर होती जा रही है। उसके भीतर आत्मकेन्द्रित होने का भाव

CENTENARY OPTICAL

For A Better View of The World

We Offer Affordable Prices in a Wide Variety of Fashionable Frames & Lenses

Designer Frames,
Contact Lenses: Colored, Toric, Bifocal
Eye Exams on Premises,
Brand Name Sun Glasses
Most Insurance Plans Accepted

416-282-2030

2864 Ellesmere Rd, @ Neilson Scarborough, Ontario M1E 4B8

RAVI JOSHI
Licensed Optician &
Contact Lens Fitter

Learn Hindi!

सु+भाषा SU+BHASHA KIDS HINDI

Magnetic board letter set

INTRODUCTORY SET / LEVEL 1

Includes:
* 8.5" x 11" metal board
* 49 Devanagari magnatic letters
* Sound chart on back of board

For ages 4 and up

KIDS HINDI.COM
SUBHASHA.COM
spanchii@yahoo.com
Ph. 1-508-872-0012

विभाजन के बाद हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में हिन्दू-मुसलमानों के मध्य जो खाई निर्मित हुई वह पटने के बजाय और गहरी हो गई है। आज भी भारत पाकिस्तान को लेकर हिन्दू-मुसलमान के बीच झगड़े, मार-पीट वारदातें हो जाया करती हैं। आज भी भारत पाकिस्तान के सम्बन्ध मधुर नहीं बन सके हैं। लाखों प्रयत्नों के बाद भी स्थिति में सुधार असम्भव दिखाई पड़ता है- "पता नहीं पाकिस्तान के नाम पर इधर वाले हिन्दुस्तान के नाम पर उधर वाले इतने जज्बाती क्यों हो जाते हैं?

जाग्रत हो गया है। ऐसे में घर के बड़े बूढ़ों का जो विशेष लगाव अपने पूर्वजों से और उनकी सम्पत्ति से है। उसकी सुरक्षा को प्रश्नचिह्न खड़ा हो गया है। जहाँ एक ओर युवा वर्ग घर परिवार से विमुख होता जा रहा है। वहीं दूसरी ओर पुराने लोगों में अपने घर परिवार को लेकर विशेष लगाव अभी भी दिखाई देता है। झोपड़ी में रहने वाले को उसकी कठिनाइयों में ही सुख मिलता है। उसे महल का वैभव नहीं लुभा पाता। अपनी अरमानों की दीवारों से घिरा घर आंगन भी जैसे मौन निमन्त्रण देता है और स्नेह की डोर से अपनी ओर खींचता है। ऐसे ही मनोवैज्ञानिक भाव को लेखिका ने 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास में दिखाया है। जिसमें सबीहा के अब्बा का अपने घर के प्रति विशेष अनुराग है वह कहते हैं कि ''अपना घर-आँगन देखे बिना चैन से मौत भी नहीं आएगी मुझे।'' [6]

पराधीन भारत में ज़मींदारी व्यवस्था के अन्तर्गत किसान शासक वर्ग के अधीन कार्यरत था। स्वतंत्रता के पश्चात् ज़मींदारी व्यवस्था टूट गई। श्रमिक वर्ग ऋण मुक्त हो गये और ज़मींदारी की ज़मीन पर बेगारी कर रहे श्रमिकों के नाम वह ज़मीन हो गई। ऐसे में अपनी बिगड़ती स्थिति को देखकर लोग घर छोड़कर जाने लगे। तब ज़मीन के प्रति विशेष मोह जगाने की आवश्यकता थी। ऐसे में अपने वैभव के खो जाने से घर जमीन के प्रति टूटता मोह दु:खद था।

उपन्यास ज़िन्दा मुहावरे में भारतीय मुस्लिम ज़मींदारों की त्रासदी का वर्णन मिलता है। ज़मींदारी टूटने के बाद मुस्लिम ज़मींदारों के गिरते जीवन स्तर का वर्णन बड़ी मार्मिकता से चित्रण करता है। पात्र शरफउद्दीन जो पाकिस्तान में बस चुके थे, अपने रिश्तेदारों से मिलने भारत आते हैं वहाँ अपने पुराने ज़मींदार परिवार की दरिद्रता से उनका पाला पड़ता है तो दिल दहल जाता है। वह अपने पाकिस्तानी मित्र को अपने भारतीय रिश्तेदारों की त्रासदी का आँखों देखा वर्णन इस तरह से करते हैं- ''बड़े अब्बा के इन्तेकाल की खबर आई थी। मैं खुद सबकी खैरियत ले आया और पुरसा भी दे आऊँ... ज़मींदारी टूटने से वह मशरा... टूट चुका था। ...बूढ़े नज़र आ रहे थे।'' [7]

ज़मींदारी टूटने के बाद आगे के जीवन की कठिनाइयों की चिंता इस उपन्यास में व्यक्त हुई है। समसामयिक युग में जिस तरह से मंहगाई और बेरोजगारी बढ़ रही है उससे मेहनत ही निज़ात दिला सकता है। जबकि ज़मींदार वर्ग नाम को अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध मानता है। उस काम से उसकी शान घटती है। मजदूरी को वह वर्ग निम्न वर्ग का कर्तव्य समझता है। लेकिन जमींदारी टूटने के बाद, उसको इस बात का बोध होता है कि जीवन का निर्वाह करने के लिए मेहनत और मजदूरी करना ही पड़ेगा- ''पुरखों की ज़मीन कब तक बेच-बेचकर खर्च चलइहो। लरकन से कहो हाथ पैर हिलाएं, खुद खेत जोतें, वरना बइठ के खाए से एक दिन कारून का खजाना भी खत्म हो जात है।'' [8]

'ज़िन्दा मुहावरे उपन्यास में मातृभूमि के प्रति प्रेम जगाने का प्रयास किया गया है। ज़मीन के अतिरिक्त गाँव, घर, खानदान अपने लोगों का भी जीवन में महत्त्व है: ''भूल मत करो, ज़मीन सबकी छिनेगी। जब मुल्क से ज़मीदारी खत्म हो रही है तो इसका मतलब है, हर छोटा-बड़ा चाहे वह हो या कोई और... पढ़ लिखकर नादान मत बनो। बँटवारा मुल्क का हुआ है, हमारे इस गांव का तो नहीं? हमारा पुश्तैनी घर, खेत, रिश्तेदारी, बिरादरी, सब कुछ तो यहीं है। वह तो किसी ने नहीं छीना?'' [9]

विभाजन के बाद हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में हिन्दू-मुसलमानों के मध्य जो खाई निर्मित हुई वह पटने के बजाय और गहरी हो गई है। आज भी भारत पाकिस्तान को लेकर हिन्दू-मुसलमान के बीच झगड़े, मार-पीट वारदातें हो जाया करती हैं। आज भी भारत पाकिस्तान के सम्बन्ध मधुर नहीं बन सके हैं। लाखों प्रयत्नों के बाद भी स्थिति में सुधार असम्भव दिखाई पड़ता है- ''पता नहीं पाकिस्तान के नाम पर इधर वाले हिन्दुस्तान के नाम पर उधर वाले इतने जज्बाती क्यों हो जाते हैं? सियासत से निकली इस हकीकत को कबूल करने की आदत भी हमें डालनी है। वह हमारा पड़ोसी मुल्क है। यूँ तो ब्रिटिश इण्डिया में बर्मा, श्रीलंका, अफगानिस्तान भी शामिल था, उनके जुदा होने को तो हम इतना अपने ऊपर हावी नहीं किये हैं?'' [10]

विभाजन के पश्चात् भारतीय मुसलमान मानसिक धरातल पर दो भागों में बंट गया है। देश और धर्म का द्वन्द्व उसके भीतर निरन्तर

चलता रहता है। कुछ भारतीय मुसलमान पाकिस्तान के समर्थक हैं। इसका कारण चाहे उनका इस्लाम धर्म के प्रति लगाव हो अथवा बहुसंख्यकों द्वारा मिलने वाली उपेक्षायें हों। विभाजन के पश्चात् भारतीय मुसलमान धर्म के नाम पर अपने अस्तित्व को स्थापित करने के लिये शिक्षा, नौकरी तथा निवास हेतु निरन्तर संघर्ष कर रहा है।

भारतीय मुसलमानों का एक पक्ष ऐसा भी है जो न केवल अपने देश के प्रति प्रेम रखता है, बल्कि वह पाकिस्तान की व्यवस्था तथा वहां की नीतियों की आलोचना भी करता है। 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास के पात्र इमाम भाई न ही पाकिस्तान बनने से प्रसन्न है और न ही उसकी नीतियों से संतुष्ट हैं। वहीं उपन्यास के पात्र जावेद मियां पाकिस्तान के समर्थक हैं। नासिरा शर्मा ने दोनों पात्रों के मध्य हुए संवाद के माध्यम से दो भारतीय मुसलमानों का विचार एवं उनकी मानसिकता को व्यक्त किया है। जावेद मियाँ इमाम भाई से कहते है कि ''बगैर देखे इमाम भाई आप एक तरफा बात कर रहे हैं। आखिर आपके दिल में पाकिस्तान को लेकर इतना बुग्ज क्यों भरा है ?'' [11]

स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्र के प्रति अनुराग पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारत में निवासरत विभिन्न वर्ग-विभाजन के पश्चात् देश की भाँति ही टुकड़ों में विभक्त हो गया था। कुछ लोगों का राष्ट्र के प्रति लगाव उतनी ही गहराई से बना हुआ था तो कुछ लोगों का राष्ट्र के प्रति आसक्ति दिखाई दे रही थी। देश प्रेम और टूटती आस्था उस समय को सबसे बड़ी समस्या के रूप में सामने आई थी। स्वाधीनता के पश्चात् के हिन्दी उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना का विविध रूपों में प्रस्फुटन हुआ है। अधिकांशत: राष्ट्रीय चेतना का अनुकरण युवा मानस में अधिक है। राष्ट्र विकास, राष्ट्रीय सुरक्षा, पुनर्निमाण, देशभक्ति आदि के रूप में राष्ट्रभक्ति की अवधारणाएं प्रवाहित हुई हैं।

भारत-पाकिस्तान का विभाजन धार्मिक गतिरोध के कारण हुआ। भारत से पाकिस्तान गए मुसलमानों को वह सम्मान प्राप्त नहीं है जो वहाँ के स्थानीय मुसलमानों को प्राप्त है। इस उपन्यास के पात्र निज़ाम के माध्यम से नासिरा शर्मा ने भारत से पाकिस्तान गए मुसलमानों की उपेक्षा और तिरस्कार का अत्यंत विश्वसनीय चित्रण किया गया है। अक्सर पाकिस्तान का ज़िक्र आते ही भारतीय मुसलमान संदेह के घेरे में आ जाते हैं, जबकि वे निर्दोष हैं। दूसरी ओर पाकिस्तानी एजेन्सियाँ यह अफवाह फैलाती रहती हैं कि भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो रहे हैं। वहाँ मुसलमान मारे जा रहे हैं। वहाँ का बहुसंख्यक वर्ग उन्हें खा जाने पर उतारू है। ऐसी भ्रामक और झूठी खबरों से साम्प्रदायिक उन्माद भड़कता है। ज़िन्दा मुहावरे उपन्यास के द्वारा इस नये तथ्य की ओर संकेत कर साम्प्रदायिक सवाल को सुलझने की कोशिश की है। इस उपन्यास का एक पात्र निज़ाम काफी अर्से के बाद अपने भाई-भाभी से मिलने भारत आता है, यहाँ आकर उसे पाकिस्तान द्वारा फैलाई जा रही भ्रामक खबरों की सूचना मिलती है तो वह बेचैन हो जाता है- ''निज़ाम का दिमाग तेजी से एक बात में उलझा हुआ था कि अब तक हिन्दू-मुस्लिम फसाद की खबरें तो पाकिस्तान में पहुँचती रही थी... एक मुसलमान अफसर के नीचे हज़ारों मातहत हिन्दू भी हो सकते हैं... बहुत कुछ कहकर भी... असलियत वह नहीं जो बताई जाती है, बल्कि सच्चाई वह है जो नज़र आ रही है।'' [12]

इस उपन्यास में हिन्दू-मुसलमानों के टकराहट की मिथ्या खबरों, अफवाहों को साम्प्रदायिकता का एक मुख्य कारण मानता है और भारतीय लोकतंत्र के प्रतिनिष्ठा व्यक्त करता है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय लोकतंत्र अपने सभी देशवासियों को वर्ग, जात धन से ऊपर उठकर बराबरी का दर्ज़ा प्रदान करता है। लेकिन बीच में धर्म के ठेकेदार व कुछ स्वार्थी राजनीतिक तत्त्व इसमें धालमेल करते हैं।

आज तक जितने दंगे हुए वह अफवाहों से ही हुए हैं। इस उपन्यास में हिन्दू-मुसलमानों के टकराहट की मिथ्या खबरों, अफवाहों को साम्प्रदायिकता का एक मुख्य कारण मानता है और भारतीय लोकतंत्र के प्रतिनिष्ठा व्यक्त करता है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय लोकतंत्र अपने सभी देशवासियों को वर्ग, जात धन से ऊपर उठकर बराबरी का दर्ज़ा प्रदान करता है। लेकिन बीच में धर्म के ठेकेदार व कुछ स्वार्थी राजनीतिक तत्त्व इसमें धालमेल करते हैं।

बिखरना मनुष्य का स्वभाव भी है, उसकी नियति भी है। टूटने की पीड़ा कुछ समय तक तो सालती है। परन्तु बाद में सब कुछ बदल जाता है। इन सभी तथ्यों को 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास में लेखिका ने अभिव्यक्ति दी है- ''रिश्ते टूट चुके हैं, मियाँ... रिश्तों को अब कोई नहीं पहचानता। जब वह नई बात थी, तो दिल को मसलती थी। एक चने की दाल, आज हम दो दरख्तों में बदल चुके है, हमारा माहौल, हमारी सोच, हमारी चुनौतियाँ, सब एक-दूसरे से जुदा है...।'' [13]

वस्तुत: साम्प्रदायिक विवादों का कारण न केवल मुसलमान बनता है और न ही हिन्दू, बल्कि समाज का वह वर्ग इसके लिये उत्तरदायी है जो असंतोष एवं अशान्ति फैलाना चाहता है

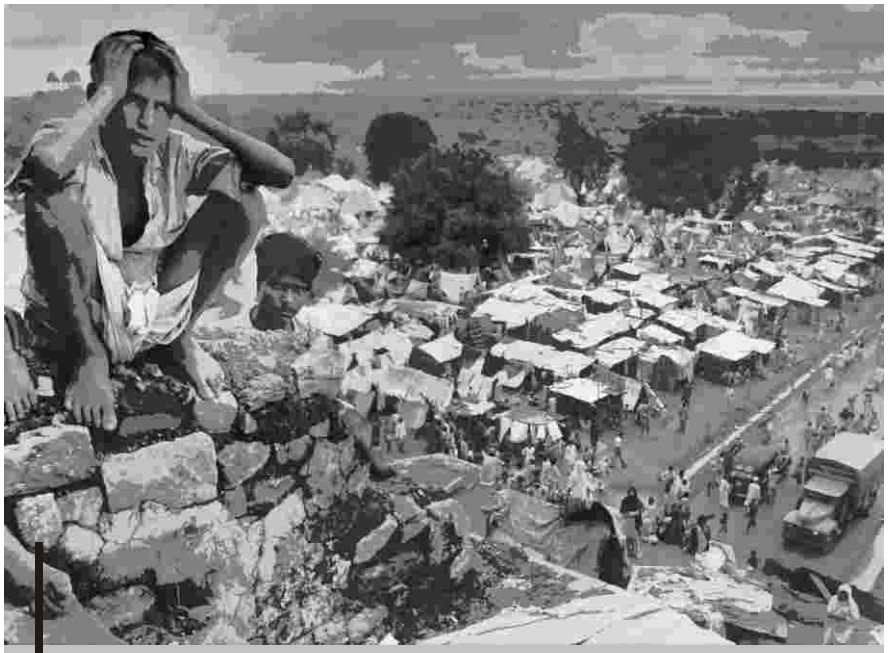

रचनाकारों ने भी यह अनुभव किया है कि खण्डित होना मनुष्य की प्रकृति है। यही कारण है कि जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा आदि के नाम पर मनुष्य टुकड़ों में बंटा हुआ है। भारत विभाजन के प्रहार से मात्र इतिहास ही घायल नहीं हुआ है उसके साथ मनुष्य का हृदय भी घायल हुआ है। जाने कितने सगे सम्बन्धी मारे गये, कितने बिछड़ गये परन्तु मनुष्य अपने आपको संकीर्णता के दायरे से बाहर नहीं निकाल सका।

साथ ही अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु इस प्रकार के विवाद खड़े करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस समस्या से मुक्ति आवश्यक है। मुक्ति के लिए कदाचित सबसे महत्त्वपूर्ण मार्ग है, समन्वय एवं भाईचारे की दृढ़ इच्छाशक्ति एवं संकल्प। 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास के आरम्भ में भारतीय मुसलमानों के पारिवारिक जीवन का चित्रण किया गया है। जिसमें पाकिस्तान को लेकर विकसित हुई मानसिकता का उल्लेख किया गया है। इस उपन्यास में चित्रित मुस्लिम समाज के अधिकतर लोग पाकिस्तान जाने का मन बना बैठे थे। राजनीति के व्यापारी जात और मज़हब के नाम पर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगे थे, जिससे युवा पीढ़ी बड़ी मात्रा में प्रभावित हो रही थी। भारत विभाजन के परिणामस्वरूप विकसित हुई मानसिकता का अत्यन्त जीवन्त चित्रण इस उपन्यास के पात्र निज़ाम के माध्यम से लेखिका ने व्यक्त किया है। निज़ाम रहने के सम्बन्ध में अपना मत देते हुए कहता है कि ''जहाँ जात है अब वही हमार वतन कह लइहे। नया ही सही अपना तो होइहे। जहाँ रोज़-रोज़ ओकी खुद्दारी को कोई ललकारियें तो नहीं। कोई ओके गरिबान पर हाथ डालै की जुर्रत तो न करिहे।'' [14]

जीवन खाने-पीने, मिलने-बिछड़ने के खेल जैसा है और कभी-कभी अज्ञानता के कारण मनुष्य कुछ खो देता है जो बहुत बहुमूल्य होता और इसका आभास होने के बाद पश्चाताप करने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं बच पाता। कभी-कभी मद में चूर वह अनैतिक व्यवहार भी कर बैठता है और बाद में पछताता है। यह पीड़ा बड़ी गहरी होती है। जब वह समझ पाता है तो मात्र खो देने के दुखद अनुभव के उसके पास कुछ भी नहीं होता। सम्पूर्ण सम्पन्नता के बाद भी कभी वे एहसास कुछ है जिसे खो देने की पीड़ा और फिर गहरी पश्चाताप की अनुभूति उपन्यास में व्यक्त की है : ''पछतावा... बहुत पछतावा हो रहा है बेटे। तुमसे क्या छिपाना। कुछ मज़ा नहीं आया जिन्दगी में, सब कुछ पाकर भी क्या खोया यह आज समझ में आया।'' [15]

रचनाकारों ने भी यह अनुभव किया है कि खण्डित होना मनुष्य की प्रकृति है। यही कारण है कि जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा आदि के नाम पर मनुष्य टुकड़ों में बंटा हुआ है। भारत विभाजन के प्रहार से मात्र इतिहास ही घायल नहीं हुआ है उसके साथ मनुष्य का हृदय भी घायल हुआ है। जाने कितने सगे सम्बन्धी मारे गये, कितने बिछड़ गये परन्तु मनुष्य अपने आपको संकीर्णता के दायरे से बाहर नहीं निकल सका। राजनीतिज्ञों द्वारा तुच्छ मानसिकता में समाज को बांधने और विभाजित करने का क्रम निरन्तर चला आ रहा है। 'ज़िन्दा मुहावरे' में शिक्षित पात्र एडवोकेट हसनैन के इस प्रवृत्तिगत अनुभूति की अभिव्यक्ति हुई है : ''तारीख को हमने जख्मी किया, उसने हमें घायल किया हम उस तहख़ाने से निकल आए, मगर आज फिर इन्सानों को तहखाने में बन्द करने की साजिश शुरू हो गई।'' [16] लेखिका का यह अनुभव देश की समसामयिक व्यवस्था एवं परिस्थितियों से प्रभावित है। वर्तमान में मनुष्य की सोच जाति, धर्म की सीमित दायरे में सिमटकर रह गयी है। जिसके परिणामस्वरूप बिगड़ते सम्बन्ध, विकृत होती सामाजिक व्यवस्था, कमज़ोर पड़ती देश की बुनियाद जैसी बड़ी समस्यायें सामने उभरकर आ रही हैं।

व्यक्ति अपने जीवनकाल में भाँति-भाँति के लोगों से मिलता है और उसके समक्ष जीवन के नित्य नये अध्याय खुलते है और कभी-कभी यह अनुभव करता है कि व्यक्ति को पूरा समझ पाने के लिये यह जीवन अत्यन्त अल्प है वास्तव में व्यक्ति एक अनबूझ पहेली-सा है। व्यक्ति को पूर्णत: समझ पाने की असफलता से उत्पन्न विषाक्तता को नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास 'जिन्दा मुहावरे' में व्यक्त किया है। आयु की सीमाओं में बँधा नश्वर मनुष्य पहेली-सी दुनिया और अव्यक्त व्यक्तित्व की परतों को खोलने की चाह में उलझकर रह जाता है किन्तु अन्तत:

रिक्तता उसके हाथ आती है- ''इन्सान की यह ज़िन्दगी कितनी कम होती है अपने को और इस दुनिया को समझने के लिये ?'' [17]

परन्तु यह सब कुछ समय की ही बात होती है, जब मनुष्य जीवन समर में उतरता है तब वह कटु सत्य से साक्षात्कार करता है, 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास में जीवन के इस सत्य को उद्घाटित किया है: *''सच कहत रहे अब्बा घर से बाहर निकलो तो बस जिल्लत और दु:ख के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं लगता है।''* [18]

संघर्ष मानव की नियति है और कर्म उसकी अनिवार्यता। उसके द्वारा किये कर्म उसके अतीत का अंश एवं वर्तमान का परिचय बनते हैं। मनुष्य के दुष्कर्म अतीत के स्थायी रूप में वर्तमान को विषाक्त बनाते हैं। जिससे मोक्ष अत्यन्त कठिन है। इसी उपन्यास की पात्र सबीहा अपनी ऐसी ही अनुभूति को व्यक्त करती है। उसकी मान्यता है कि *''गुजरा कल हर इंसान पर भारी होता है। उससे जान छुड़ाना बहुत मुश्किल है और इस मौजूदा हकीकत से इन्कार भी गद्दारी है।''* [19]

मनुष्य को व्यवहार एवं संस्कार देने में संस्कृति का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। किसी भी देश को गौरव का सम्बन्ध कहीं न कहीं वहां की संस्कृति से अवश्य सम्पृक्तता होता है। आधुनिक युग में भारतीय संस्कृति धर्म का पर्याय बन गई है, अब बार-बार धर्म का उल्लेख न होकर संस्कृति का उल्लेख होता है। इसी तथ्य को 'ज़िन्दा मुहावरे' उपन्यास के पात्र जावेद के माध्यम से व्यक्त किया गया है : *''कोई मुल्क, कोई कौम, धन-दौलत, मोटर गाड़ी से अजीज़ नहीं बनती, बल्कि उसकी तहज़ीब और तरीके।''* [20]

समाज को व्यवस्थित एवं विकसित रूप प्रदान करने के लिए विवाह को अनिवार्य अंग माना गया है। भारतीय समाज में पुत्री का विवाह एक आवश्यक दायित्व है। जिसकी चिन्ता माता-पिता को सर्वाधिक रहती है। अच्छा वर, परिवार और उसके भविष्य की सुरक्षा को पूरा ध्यान रखते हुए वह वर की खोज करते हैं। वर्तमान युग में मनुष्य की इच्छायें बढ़ गयी हैं। दहेज का दानव माँ-बाप के मन को आतंकित करता रहता है। प्राय: समाचार पत्रों में शिक्षित शिष्ट समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले लोगों के नाम भी पुत्रवधू दाह में शामिल मिलते हैं। आज असुरक्षा इतनी बढ़ रही है कि एक निर्धन की बेटी अपने डोली उठने के दबे-दबे सपने देखती है और मध्यवर्गीय परिवार की लड़कियाँ विवाह के समय अपने शरीर पर सुशोभित आकर्षक वस्त्र में भविष्य देखती हैं। बार-बार उनके मस्तिष्क में यह प्रश्न उठता है कि यह अरुणिमा स्वर्णिम भविष्य का उल्लास बनेगी अथवा ज़िन्दा चिता की अग्नि लपटें। कितने पितृजनों को अपमान का सामना करना पड़ता है। आज दहेज की बुराई करने वाले अनेक लोग मिलेंगे पर व्यवहार में दहेज से परहेज करने वाले आज भी अपवाद मात्र हैं। भारतीय समाज का यह यथार्थ वर्तमान में दोनो धर्म के समाजों (हिन्दू एवं मुसलमान) में समान रूप से लक्षित किया जा सकता है। ज़िन्दा मुहावरे उपन्यास में मुस्लिम समाज में विवाह से जुड़ी ऐसी ही समस्या का उजागर किया गया है। जहाँ पुत्री के परिवार वालों को आत्मसम्मान से आहत होने की सम्भावना दिखाई पड़ती है। इसी उपन्यास की पात्र सुगरा के बाप के माध्यम से व्यक्त किया गया है *''अब हमार इज्जत एही में रही कि वह मुँह फाड़कर कुछ कहते हमीं उनकी अंगूठी वापस भिजवाए दें।''* [21]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि देश विभाजन के पश्चात् वातावरण में व्याप्त आशंका, अशान्त, द्वन्द्व, संघर्ष, विघटन एवं तदोपरान्त लिखे गये मुस्लिम समाज प्रधान इस उपन्यास में मानवीय प्रवृत्तिगत अनुभूति जैसे सम्बन्धों का द्वन्द्व, शोषण, आर्थिक विषमता, नारी की अनुभूति, धर्म, समाज, देश जाति की विघटित मानसिकता, प्रेम सम्बन्धी अनुभूति एवं कल्पना, स्वप्न एवं यथार्थ से संघर्ष करते जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालने के उपरान्त हम देखते हैं कि अनुभव जीवन का अनिवार्य अंग है। जिससे जीवन के अनेक आयाम प्रभावित है। ◆◆◆

सन्दर्भ :

1. डॉ. योगेन्द्र बख्शी, हिन्दी तथा पंजाबी उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, शोध प्रबन्ध

   प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं., मई 1976, पृ. 203
2. Progs, Govt. of India, Home Deptt. Senate file No.222 of 1942
3. नासिरा शर्मा, ज़िन्दा मुहावरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1994, पृ. 101
4. वही, पृ. 79 5. वही, पृ. 123
6. वही, पृ. 53 7. वही, पृ. 40
8. वही, पृ. 60
9. वही, पृ. 10
10. वही, पृ. 47
11. वही, पृ. 47
12. वही, पृ. 127
13. वही, पृ. 128
14. वही, पृ. 11
15. वही, पृ. 127
16. वही, पृ. 124-125
17. वही, पृ. 127
18. वही, पृ. 20
19. वही, पृ. 56
20. वही, पृ. 48 21. वही, पृ. 23

असि. प्रोफेसर हिन्दी, हलीम मुस्लिम पी.जी. कालेज, कानपुर

सम्पादक वाड्मय पत्रिका, बी. 4 लिबर्टी होम अब्दुला कालेज रोड, अलीगढ़

EKAL VIDYALAYA

एकल विद्यालय – एक अध्यापक वाला स्कूल

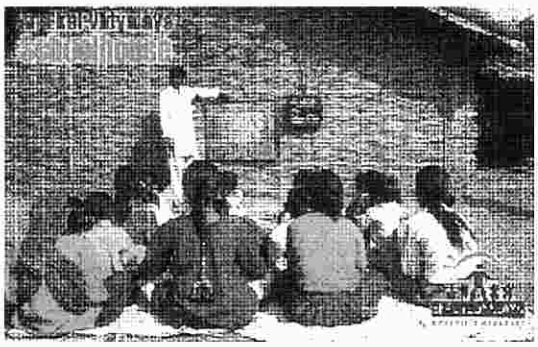

यह स्वयं सेवकों वाली योजना जो कि आदिवासी व पिछड़ी हुई जातियों के बच्चों को शिक्षित करने के उद्देश्य से बनाई गई है। इसमें सरकार का कोई योगदान नहीं है, यह नि:शुल्क है। इसका उद्देश्य आदिवासी लोगों के बच्चों को निरक्षरता से उन्मुक्त करना है। यह जनता का आन्दोलन है। जैसा कि सर्वविदित है कि आदिवासियों में साक्षरता बिल्कुल न के बराबर है। पुरुषों में 12 प्रतिशत और स्त्रियों में 5 प्रतिशत। यह आन्दोलन अभी बिल्कुल नया है किन्तु कुछ ही समय में हमने इस दिशा में आश्चर्यजनक उन्नति की है। भारत में 133,913 आदिवासियों के गाँव हैं जिनमें 10 या 12 प्रतिशत गाँवों में स्कूल हैं।

'एकल विद्यालय' के आन्दोलन से आज 27,041 पाठशालाएँ खुल चुकी हैं। ये स्कूल भारत और नेपाल के सीमावर्ती स्थानों में सेवा कर रहे हैं। इस समय 7,53,123 विद्यार्थी इनमें शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। हमारा विश्वास है कि 2011 के अंत तक हम 100,000 पाठशालाएँ खोल सकेंगे।

इस महान सेवा में हमें आपके सहयोग की बहुत आवश्यकता है। यह सबसे कम खर्चे वाली योजना है जिसमें एक स्कूल को चलाने के लिए लगभग 400 डालर साल में खर्च होते हैं और लगभग 25 से 40 विद्यार्थी इसमें शिक्षा ग्रहण कर सकते है। हमें आशा है कि आप हमारे इस स्वप्न को साकार कराने में हमारे साथ हैं। हम आपको आपके अनुदान के लिए टैक्स की रसीद भी देते हैं।

आओ मिलकर हम सब शिक्षा का दीप जलाएँ।
उन आदिवासियों के जीवन में आशा की किरण जगाएँ।।
जब तक अविद्या का अँधेरा हम मिटावेंगे नहीं,
तब तक समुज्वल ज्ञान का आलोक पावेंगे नहीं।

कैनेडा में एकल विद्यालय फाउन्डेशन का पता

817- 25 KINGSBRIDGE GDN.CIR.,
MISSISSAUGA, ON. L5R 4B1
EMAIL: RV1_CA@YAHOO.COM,
WWW.EKAL.ORG,
T.NO. 905- 568-5235

मेरी तन्हाइयों के साथी

बी.मरियम, कराची, पाकिस्तान

कुछ पुरानी यादें हैं
कुछ भूली-बिसरी बातें हैं
कुछ मीठी मुस्कानें हैं
कुछ सुख-दुख के आंसू हैं

कुछ खुशियों के नग्मे हैं
कुछ दर्द भरी टीसें हैं
कुछ बिछड़ों के साये हैं
कुछ अपनों की तस्वीरें हैं

मेरे जीवन की यह पूंजी
मेरी तन्हाई की साथी हैं.

तीन कविताएँ

इला प्रसाद, यू.एस.ए

जंगली

दिनभर के हिमपात
और
उसके तत्काल बाद
खिली धूप में
जो बचे रह गए
उन पौधों से मैंने पूछा
अरे! तुम कैसे बचे रह गए?
वे मुस्कराए,
हमारा क्या,
हम तो जंगली हैं न!

मन

कोई भी स्वर
कुछ
ही क्षणों के लिए
झंकृत करता है
मन के तार
कोई भी स्पर्श
कुछ
ही क्षणों के लिए
एहसासों की डोर पर
थरथराता है
फ़िर चुक जाता है
सबकुछ
जलसतह होता है
मन!

आईना

आईने
को साफ़ करना
करते
रहना
जरूरी
है
अपने
खूबसूरत होने का
भरम
हो जाता है!

बेटी ब्याही गई है

दिविक रमेश, दिल्ली

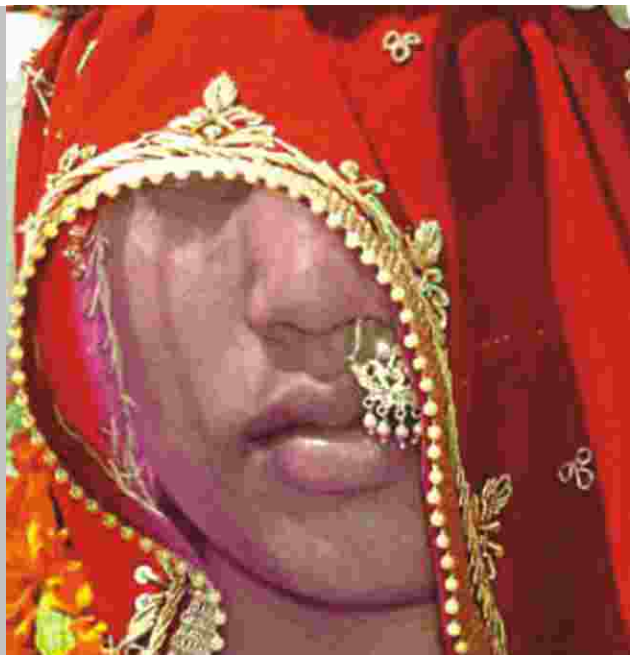

बेटी ब्याही गई है
गंगा नहा लिए हैं माता-पिता
पिता आश्वस्त हैं स्वर्ग के लिये
कमाया है कन्यादान का पुण्य।

और बेटी ?
पिता निहार रहे हैं, ललकते से
निहार रहे हैं वह कमरा जो बेटी का है कि था
निहार रहे हैं वह बिस्तर जो बेटी का है कि था
निहार रहे हैं वह कुर्सी, वह मेज
वह अलमारी
जो बंद है
पर रखी हैं जिनमें किताबें बेटी की
और वह अलमारी भी
जो बंद है
पर रखे हैं कितने ही पुराने कपड़े बेटी के।

पिता निहार रहे हैं
और माँ निहार रही है पिता को
जानती है पर टाल रही है
नहीं चाहती पूछना
कि क्यों निहार रहे हैं पिता।

कड़ा करना ही होगा जी
कहना ही होगा
कि अब धीरे-धीरे
ले जानी चाहिए चीजें
घर अपने बेटी को
कर देना चाहिए कमरा खाली
कि काम आ सके।

पर जानती हैं माँ
कि कहना चाहिए उसे भी
धीरे-धीरे पिता को।
टाल रहे हैं पिता भी
जानते हुए भी
कि कमरा तो करना ही होगा खाली
बेटी को।

पर टाल रहे हैं
टाल रहे हैं कुछ ऐसे प्रश्न
जो हों भले ही बिन आवाज
पर उठते होंगे मन में
ब्याही बेटियों के।

सोचते हैं कितनी भली होती हैं बेटियां
कि आंखों तक आए प्रश्नों को
खुद ही धो लेती हैं
और वे भी असल में टाल रही होती हैं।

टाल रही होती हैं
इसलिए तो भली भी होती हैं।

सच में तो
टाल रहा होता है घर भर ही।

कितने डरे होते हैं सब
ऐसे प्रश्नों से भी
जिनके यूं तय होते हैं उत्तर
जिन पर प्रश्न भी नहीं करता कोई।

माँ जानती है
और पिता भी
कि ब्याह के बाद
अब मेहमान होती है माँ
अपने ही उस घर में
जिसमें पिता, माँ और भाई रहते हैं।
माँ जानती है
कि उसी की तरह
बेटी भी शुरू-शुरू में
पालतू गाय सी
जाना चाहेगी
अब तक रह चुके अपने कमरे में।

जानना चाहेगी
कहां गया उसका बिस्तर
कहां गई उसकी जगह।

घर करते हुए हीले हवाले
समझा देगा धीरे-धीरे
कि अब
तुम मेहमान हो बेटी
कि बैठो बैठक में
और फिर जरूरत हो
तो आराम करो
किसी के भी कमरे में।

माँ जानती है
जानते पिता भी हैं
कि भली है बेटी
जो नहीं करेगी उजागर
और टाल देगी
तमाम प्रश्नों को।

पर सोचते तो हैं पिता....
पर कब तक ?

नवजवानों

डॉ. गुलाम मुर्तजा शरीफ, अमेरिका

अपनी रूह को बेकरार करो
जज़्बात-वो-ख्यालों का इज़हार करो
चुप रहके सितम और भी बढ़ जाते हैं
कुछ तो बोलो खुदी से प्यार करो

आज हर सिम्त उरयानी ही उरयानी है
बेहयाई सजा बन के आई है
कल जो कोठे में जलती थी शमा
आज घर-घर में 'कला' बन के छाई है

उठो भोले भाले गय्यूर जवानों
माँ-वो-बहनों के सर की चादर संभालो
बचा लो बचा लो, बचा लो बचा लो
सिसकती हुई सभ्यता को बचा लो.

महान हत्यारा!

वेदप्रकाश वटुक, यू.एस.ए.

सिकन्दर ने नहीं लगता मुझे
एक दिन भी जिया सुख से
या कभी जीने दिया
दूसरों को सुख से
विश्व-विजय की चाह में
उसने उजाड़े गाँव
रौंदी फसलें
किया नरसंहार
त्यागने को अंत में
समय से पहले स्वयं के प्राण
पता नहीं कौन था वह
दूसरों की त्रासदी में
ढूँढ़ता सुख
इतिहासकार जिसने कहा था
वृहत्तम हत्यारे को महान!

नव अंकुर

अदिति मजूमदार, अमेरिका

नज़र झुकाए जो वे पहलू में आए
आकर पूछा कि आप कैसे हैं
उनकी नज़रों में इस कदर खो गए
कि उन्हें क्या बताएँ कि हम कैसे हैं

कहते हैं कि नज़रों में भाषा है
बिन कहे ही कुछ कह जाते हैं
झुकी नज़रों से भी लोग
घायल हो जाते हैं

नज़रों में गिरना-उठना होता है
नज़रों से छिपना-छिपाना होता है
नज़रों के होती है जो नज़र
उनमें भी कई बातें आती हैं नज़र

मैं कब से नज़र बिछाए बैठा हूँ
क्या वो नज़र आएगी
या ढूँढता फिरूँ मैं उस नज़र को
जो सिर्फ मेरे लिए झुकाएगी

नज़रों से नज़रें बातें करती हैं
जिनको नज़रें ही समझ पाती हैं
नज़रों में नज़र आना एक खूबी है
वरना समझो ज़िन्दगी डूबी है.

ग़ज़ल

धनंजय कुमार, यू.एस.ए.

अश्क आँखों से ढल गया होगा
कोई मन्ज़र बदल गया होगा
जो कभी दिल में छुपके आया था
अब ज़ेहन से निकल गया होगा
वो मेरी राख़ बुझाने के लिए
आग में अपनी जल गया होगा

कौन रखता है बराबर के हिसाब
कर्म आया था, फल गया होगा
अपनी सूरत नज़र नहीं आती
आइना चाल चल गया होगा
एक दुल्हन को सजाने के लिए
आज सोना पिघल गया होगा.

लघुकथा

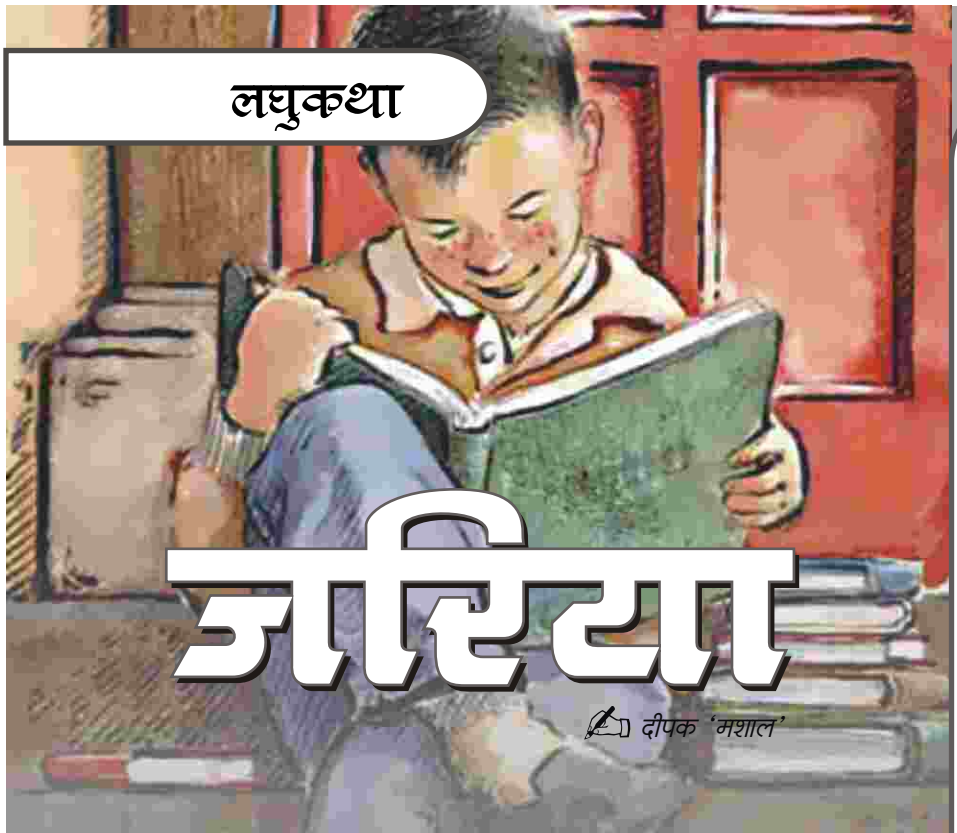

जरिया

✍ *दीपक 'मशाल'*

'अंकल मैं उस कॉमिक्स का दो दिन का किराया नहीं दे पाऊंगा.' कॉमिक्स को एक दिन ज्यादा रखने का किराया देने में असमर्थता ज़ाहिर करते हुए बल्लू ने दुकानदार से कहा. लेकिन उसके चेहरे पर कोई भाव ना देख बेचारगी-सी दिखाते हुए बोला-

'प्लीज एक ही दिन का किराया ले लीजिये ना अंकल..'

'हम्म... पैसा तो पूरा देना पड़ेगा.' सपाट-सा जवाब मिला और फिर थोड़ी देर तक खामोशी.

'रहता कहाँ है वैसे तू? किसका लड़का है?' उसे ऊपर से नीचे तक घूरते हुए सवाल हुआ.

जेब में सिर्फ अठन्नी लिए बल्लू को कुछ आशा जगी- 'अरे अंकल वो नाले के पास छिद्दन कारीगर को जानते हैं, उन्हीं का बेटा हूँ.'

'ठीक है माफ़ कर देता हूँ... और मेरा काम करेगा तो फ्री में भी पढ़ सकेगा.' कुछ सोचने के बाद जवाब आया.

'लेकिन कल दोपहर 2 बजे आना जब दुकान के आसपास कोई ना हो, सब समझा दूंगा.'

खुशी से झूमता बल्लू सिर हिला के चला गया लेकिन रास्ते भर सोचता रहा कि कौन-सा काम होगा जिसकी वजह से उसे इतनी ढेर सारी कॉमिक्स फ्री में पढ़ने को मिलेगी. खैर जो भी हो करने का निश्चय कर लिया उसने और अगले दिन नियत समय पर दुकान पर पहुँच गया.

'आ गया तू! किसी ने देखा तो नहीं?'

'नहीं.' उसने सिर हिलाकर संक्षिप्त-सा उत्तर दिया.

'हम्म... चल अन्दर वाले कमरे में.'

थोड़ी देर खामोशी छाई रहने के बाद अन्दर वाले कमरे से आवाजें आ रहीं थीं- 'छि: अंकल ये गन्दा काम है... मुझे घिन आती है.'

'तुझे कॉमिक्स पढ़नी है या मैं किसी और को फ्री पढ़ाऊं?'

कुछ पल की खामोशी के बाद अब बल्लू फ्री में कॉमिक्स पढ़ने के नए ज़रिये के लिए राज़ी हो गया था. ◆◆◆

नज़्म

प्रेम मलिक, केनेडा

मेरे लिए ज़मी है बड़ी,
मैं जमी से कभी कुछ
छुपाता नहीं
इन हवाओं पे मेरा भरोसा नहीं,
मैं हवाओं
को कुछ बताता नहीं

ये हवाएं तो उड़ के चली जायेंगी,
हर नगर
हर डगर पे बदल जायेंगी
तू करना ना इनका भरोसा कभी,
ये तुम्हारे हाथ ना आएँगी
इनकी किसी बात पर मुझको
यकीं आता नहीं
इन हवाओं पे मेरा भरोसा नहीं,
मैं हवाओं को कुछ बताता नहीं

इस ज़मीं पे मेरा आशियाना बना
सर छुपाने का बस ठिकाना बना
इससे जो भी कहा, ना फसाना बना
ना हुआ हादसा, ना कोई बहाना बना
मैं यकीं से कहूँ कि मेरा कोई भेद,
इस ज़मी के बाहर जाता नहीं
इन हवाओं पे मेरा भरोसा नहीं,
मैं हवाओं को कुछ बताता नहीं

इस ज़मी ने ना मुझसे कोई वायदा लिया
मैंने रोंदा इसे कदमों तले
इसने फिर भी मेरा बस फायदा किया
सर झुकाता हूँ तुझ को ज़मी मैं
तूने ज़रूरत से भी कुछ ज़्यादा किया
सर झुका है मेरा तेरे कदमों तले
सर कभी भी कहीं मैं झुकाता नहीं
मेरे लिए ये ज़मी है बड़ी,
मैं ज़मी से कभी
कुछ छुपाता नहीं.

THE NILGIRIS

Authentic Madras Kitchen

आप नीलगिरी में आयें,
हमारे शुद्ध, स्वादिष्ट, इडली, धोसा,
उतपम व मिठाइयाँ खायें, आप उँगलियाँ चाटते ही रह जायेंगे,
और बार –बार अपने दोस्तों और परिवार के साथ आयेंगे ।

Dine in Resturant
Take out & Catering

● Idli ● Masala Dosa ● Rava Dosa
● Uthappam ● Sweets & Snacks

Jeyanthy or Bhalu
Tel/Fax: (416) 412 0024

Markham & McNicoll Centre
3021 Markham Road, Unit #50
Scarborough, ON M1X 1L8

कैनेडा का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी साप्ताहिक • हर सप्ताह 30,000 पाठक

हिन्दी Abroad

www.hindiabroad.com

हिन्दी Abroad

Published by
HINDI ABROAD MEDIA INC.

Chief Editor
Ravi. R. Pandey
(Media Critic, Ex Sub Editor - Times Of India Group, New Delhi)

Editor
Jayashree

News Editor
Firoz Khan

Reporter
Rahul, Shahida

New Delhi Bureau
Rangnath Pandey
(Ex Chief Sub Editor - Navbharat Times, New Delhi)
Shiela Sharma,
Vijay Kumar

Designing
AK Innovations Inc.
416-892-1538

7071 Airport Road, Suite 204A
Mississauga, ON
Canada: L4T 4J3
Tel: 905-673-9929
Fax: 905-673-9184
E-mail: hindiabroad@gmail.com
editor@hindiabroad.com
Web: www.hindiabroad.com

Disclaimer: The opinions expressed in Hindi Abroad may not be those of the publisher. Contents of this publication are covered by copyright and offenders will be prosecuted under the law.

आधी आबादी की कविताएँ

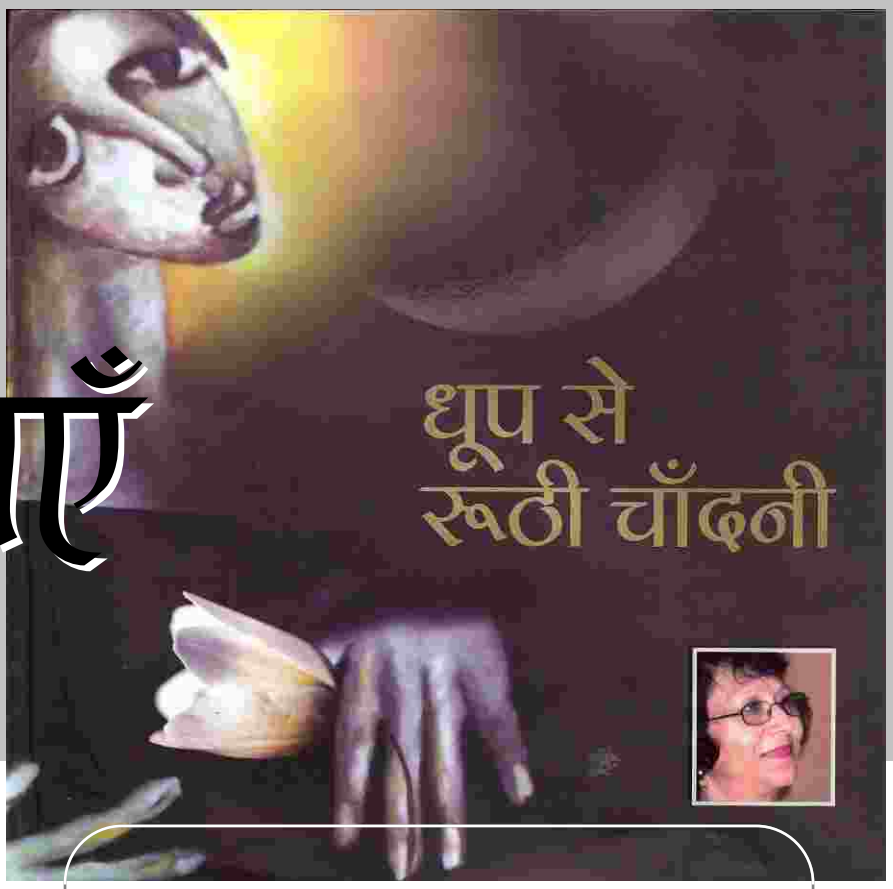

✍ डॉ. पुष्पा दुबे

कविता हमेशा अपने समय के दबाव को महसूस करते हुए मानवीय दायित्व का निर्वाह करते आई है। वह मनुष्य के हृदय को परिष्कृत करती है तो अपने समाज के सरोकारों से भी जोड़े रखती है। 'धूप से रूठी चाँदनी' काव्य संग्रह समय के इन्हीं दबावों, मानवीय जीवन के विभिन्न रंगों, उतार-चढ़ाव और प्रश्नों को रेखांकित करने वाला डॉ. सुधा ओम ढींगरा का काव्य संग्रह है। बात जब कभी हिन्दी भाषा और साहित्य की हो, हिन्दी राष्ट्रभाषा के संदर्भ में, और उस पर भी विदेश में रहने वाले भारतीय साहित्यकारों की जो हिन्दी भाषा और साहित्य में रत हैं तो निश्चित ही सुखद अनुभूति होती है और हवा में एक राष्ट्रीय सुगंध तैर जाती है।

मुक्त छन्द में लिखी कविताएँ जो गद्यात्मक अधिक हैं, मानवीय जीवन की गहन अनुभूतियों को उद्घाटित करती हैं। आज के वैश्वीकरण और भौतिकतावादी समय में सुख-सुविधाओं से सम्पन्न मनुष्य सुख की तलाश में है, सत्य की तलाश में है, लेकिन सत्य से दूर है। टूटा हुआ है और व्यथित है। कवयित्री इन भावनाओं और आकांक्षाओं के जंगल में भटकते मनुष्य की पड़ताल करते हुए उन अनुभूतियों को स्तर देते हुए चलती हैं।

पढ़े-लिखे, सम्पन्न वर्ग के लोगों में विदेश जाना एक 'स्टेटस सिम्बल' बन गया है शायद इसीलिये आज के व्यक्ति को एक तरफ तनावपूर्ण प्रतिस्पर्धा का सामना करना है तो दूसरी पीड़ा विदेश में रहकर देश की स्मृति है। सम्भवत: सुधा जी का कवि हृदय, अप्रवासी भारतीयों की इस पीड़ा से व्यथित है।

पढ़े-लिखे, सम्पन्न वर्ग के लोगों में विदेश जाना एक 'स्टेटस सिम्बल' बन गया है शायद इसीलिये आज के व्यक्ति को एक तरफ तनावपूर्ण प्रतिस्पर्धा का सामना करना है तो दूसरी पीड़ा विदेश में रहकर देश की स्मृति है। सम्भवत: सुधा जी का कवि हृदय, अप्रवासी भारतीयों की इस पीड़ा से व्यथित है। इसीलिये अपने देश की गीली मिट्टी की सौंधी-सौंधी गंध के लिये उनका मन व्याकुल है। विघटित मूल्यों से, बढ़ते आतंकवाद से, देश की सुरक्षा के लिये मन शंकित है इसलिये बार-बार 'दाग देती हैं' कई प्रश्न नेताओं की ओर और हर बार दुत्कारी जाती हैं। परदेशी होने का अपमान सहने की पीड़ा है। और 'हर बार उसके प्रश्न नेताओं के

सामने परोसे मुर्गो के नीचे दब जाते हैं। शराब के प्यालों में बह जाते हैं।' सुधा जी ने नेताओं के भ्रष्टाचार पर जिस बेबाकी और निडरता से कलम चलाई है वह काबिल-ए-तारीफ है। व्यंग्यकार अकबर इलाहाबादी का शेर स्मृत हो जाता है - 'कौम के गम में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ, रंज लीडर को बहुत हैं मगर आराम के साथ।'

सुधा जी मनुष्य की सहज और सामान्य जीवन की अनुभूतियों को भी पकड़ते हुए चलती हैं। 'विज्ञान और बौद्धिक विकास और भौतिक संवाद ने बचपन की छोटी-छोटी खुशियाँ छीन लीं।' इसीलिये याद आता है वह पुराना समय, भारतीय संस्कृति की पुरानी परम्पराएँ जहाँ हम अपने पूर्वजों को नक्षत्रों के रूप में देखा करते थे। लेकिन आज मृत लोगों को याद करना तो वर्तमान आत्मीय रिश्ते भी ठंडे पड़ते जा रहे हैं। मनुष्य प्रकृति से दूर होता जा रहा है। मशीनी जीवन ने उसकी संवेदनशीलता को आकाशीय नक्षत्र और दादा-दादी नाना-नानी सबको निगल लिया है। इसीलिये 'मेरे शहर में तारे कभी-कभी झलक दिखलाते हैं, खुले आकाश में फैले तारों को हम तरस तरस जाते हैं, जब कभी निकलते हैं तो फीकी-सी मुस्कान पे इठलाते हैं, पराये-पराये से लगते हैं।'

यह संवेदनहीनता केवल आम व्यक्तियों में ही है ऐसा नहीं है 'कल्पनाओं में मुझे बुनने वाले अब कवि भी कहाँ बौध्दिक कौशल में उलझे उनके हृदयों में अब मैं कहाँ।' आज कवि कर्म भी केवल पांडित्य प्रदर्शन और मात्र यश प्राप्ति का साधन बन कर रहा गया है। लेकिन सुधा जी को आशा है कि प्रकृति मनुष्य की प्रेरणा स्रोत बनकर उसे कर्तव्यबोध कराने में सक्षम होगी इसीलिये 'धर्म निभाने कुछ बेचैन रूहों, अतृप्त आत्माओं को सुख देने, चाँदनी धरती पर उतरने लगी।'

सुधा जी की कविताओं में प्रकृति के विविध रूप उद्घाटित हुए हैं। कहीं प्रकृति का उल्लास है तो कहीं मनुष्य से आत्मीय संबंध (तेरा मेरा साथ) तो कहीं पर सीख है।

यह संवेदनहीनता केवल आम व्यक्तियों में ही है ऐसा नहीं है 'कल्पनाओं में मुझे बुनने वाले अब कवि भी कहाँ बौध्दिक कौशल में उलझे उनके हृदयों में अब मैं कहाँ।' आज कवि कर्म भी केवल पांडित्य प्रदर्शन और मात्र यश प्राप्ति का साधन बन कर रहा गया है। लेकिन सुधा जी को आशा है कि प्रकृति मनुष्य की प्रेरणा स्रोत बनकर उसे कर्तव्यबोध कराने में सक्षम होगी इसीलिये

"धर्म निभाने कुछ बेचैन रूहों, अतृप्त आत्माओं को सुख देने, चाँदनी धरती पर उतरने लगी।"

सुधा जी की काव्यानुभूतियाँ विस्तृत हैं। उनकी संवेदना स्त्री पीड़ा में मुखर होकर संबोधित होती है। इसीलिये उनकी कविताओं में नारी संवेदना मूल स्वर बनकर उभरा है। और इसीलिये ये कविताएँ आधी आबादी की प्रतिनिधि कविताएँ प्रतीत होती हैं। चाहे किसी भी देश, काल की नारी हो, उसे पुरुषों ने सूली पर टाँगा है। उसे सिर्फ 'औरत' समझा है। 'वंश बढ़ाने का बस एक माध्यम ही समझा। पर उसे इन्सान किसी ने नहीं समझा।'

कवयित्री को विश्वास है कि वह 'मोम की गुड़िया' हो या 'कठपुतली' फिर भी 'कमाज़ोर' नहीं। इसीलिये वह ऐसा समाज निर्मित करना चाहती है जहाँ औरत सिर्फ माँ, बेटी, बहन, पत्नी या प्रेमिका ही नहीं एक इन्सान सिर्फ इन्सान हो। रिश्तों के बंधन से पृथक अपना अस्तित्व अपने मनुष्य होने का बोध, वो बहुत बड़ा प्रश्न है जिस पर पूरे विश्व समाज को चिंतन करना है। 'स्त्री-पुरुष दोनों से सृष्टि की संरचना है फिर यह असमान्यता क्यों।' यह प्रश्न सामान्य प्रश्न नहीं है। कवयित्री इसका दायित्व पूरे पुरुष समाज पर डालती है।

कविता और नारी में स्त्री मन की व्यथा और इसकी अव्यक्त कामनाओं को कवयित्री ने बड़ी सूक्ष्मता एवं गहराई से पकड़ा है और उसे उद्घाटित करना अपना कर्तव्य माना है।

इसी तरह 'ईश्वर से साक्षात्कार', 'एक और महाभारत' जैसी कविताएँ समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं स्वार्थी प्रवृति को उजागर करने का प्रयास करती हैं।

सोहणी महिवाल, शीरीं फरहाद के माध्यम से मानवीय हृदय के कोमल भावों की अभिव्यंजना भी सरल और सहज रूप में की है। आशा है कवयित्री सुधा ओम ढींगरा जी की काव्ययात्रा आज के मनुष्य के जीवन में हस्तक्षेप कर उसे मनुष्य होने का बोध कराने में सफल रहेगी।

कविता संग्रह - **धूप से रूठी चाँदनी**
लेखिका - डॉ. सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशन - शिवना प्रकाशन, सीहोर, म.प्र.
मूल्य - 300 रुपये ($20)
www.pustak.org

Dr. Dilawri Wellnes & Rehabilitation Centre

Professional Consultation Services

வேலை இடத்தில் பாதிப்புக்குள்ளாகி விட்டீர்களா?
பொது இடங்களில் வழுக்கி விழுந்து விட்டீர்களா?
வாகன விபத்தின் தாக்கத்துக்குள்ளாகி விட்டீர்களா?
உடற்பயிற்சி மற்றும் விளையாடும்போது தீங்கு ஏற்பட்டுவிட்டதா?

Have You Suffered A Slip and Fall?
Are You Affected By A Sport Injury?
Did You Meet With An Automobile Accident?
Have You Been Affected By The Workplace?

क्या आप कभी फिसल कर गिर गये थे ?
क्या कभी आपको किसी खेल में चोट लगी थी?
क्या कभी आपको कार के एक्सीडेन्ट में चोट लगी थी ?
क्या आपको कभी अपने काम पर कोई चोट लगी थी ?

உங்களின் சேவைக்காக நாங்கள்

Dr. Nitin Dilawri, M.Sc., D.C., DAc
Chiropractor - Acupuncturist
1350 Ellesmere Road, Room No. 229
Bus: 416 645 3027
Fax: 416 422 6499
Direct: 647 438 6223
Text Message Only: 647 831 4357
E mail: info@accessconsultation.com

Locations: Greater Toronto Areas (G.T.A) I Durham I York I Peel

MEDICINE - MEDITATE - MIND

चित्रकाव्य-कार्यशाला

बाजे ढोल दमादम नचलो
बोल हड़ीप्पा
धान-धान छायी खुशहाली
बोल हड़ीप्पा
तू गा तान सुरीली बैजू
बोल हड़ीप्पा
- **लावण्या शाह**, यू.एस.ए.

+

डम, डम, डम जब बाजे ढोल, कोई व्यक्ति ना रहे खड़ा
सबके थिरके पाँव तले पे यूँ थे, बिन पिए ही नशा चढ़ा
खुशियों का जब मौका आये, बैशाखी, होली का पर्व बड़ा
बरात में जब जायें बराती, हूँ दुल्हा घोड़ी पर चढ़ा
और खिन भले हो ना हो, पंजाबियों का तो पड़े भंगड़ा
कूद-कूद कोई लट्टु उछाले, कोई लहराता है रूमाल
कोई जैसे मर्जी नाचे, भले मिले न ढोल पे ताल
नाच ना जाने आंगन टेड़ा, नहीं करेगा कोई सवाल
यह वो नृत्य कला है जिसमें, सबकी गल जाती है दाल.
- **सुरेन्द्र पाठक**, केनेडा

+

इस बार दिखा दें अपनी कलाकारी
जब हम बजाएँगे ढोल और
नाचेंगे स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर
भर देंगे ऐसा उत्साह सबसे मन अंतर्मन में
होंगे सब ओतप्रोत देशप्रेम भाव में
याद करेंगे यह स्वतंत्रता दिवस
बार-बार आने वाले कई वर्षों तक
- **राज महेश्वरी**, कैनेडा

+

खोली चेतना मैंने, तो दिल में ये कुछ हुआ
चित्रों को देखा मैंने, तो मैं देखते ही रहा
सोचा ये रब की कुदरत, रब आदमी में आ गया
कहने पढ़ी ना मैंने, बस चित्रों ने सब बता दिया
इंसान देख तू भी, रब तुझ में समा गया
अपनी कला से तुने, सबको लुभा दिया.
- **प्रेम मलिक**, केनेडा

उपरोक्त चित्र को देखकर आपके मन में विचार उठ रहे हैं तो संकोच मत करिये और हमें लिख भेजिये. आपके विचार आगामी अंक में प्रकाशित किये जायेंगे.

Personalized Investment Advice

For individual Investors

Member CIPF

Edward Jones®

Serving Individual Investors

Harvinder Anand
Investment Representative

- GICS
- Bonds
- Stocks
- Mutual Funds
- RRSPS RRIFS RESPS
- Life insurance
- Disability Insurance
- Critical Illness Insurance

INSURANCES AND ANNUITIES ARE OFFERED BY
EDWARD JONES INSURANCE AGENCY

Phone No: 905-472-8300 www. edwardjones.com

280 Elson St. Unit # 5, Markham, Ont. L3S 3L1

क्रमांक ६

• चित्रकार: अरविन्द नारले • कवि: सुरेन्द्र पाठक

जब से यह संसार बना है, जब से जन्मा है इन्सान
अपने लिये बनाये उसने, मनोरंजन के सब सामान
हर जीवन में सुख-दुख आये, क्या गरीब और क्या अमीर
कितना किसी को क्या मिलता है, यह तो अपनी अपनी तकदीर

इस चित्र में ज़रा देखिये, एक राजा की ऊंची शान
दिल बहलाने चला नृत्य-घर, हाथ में फूल और मूँह में पान
सिर पर कलगी वाली पगड़ी, गले लिपटा है रुमाल रेशमी
पाओं तक लंबी पहने हुये है, सफेद पोशाख बड़ी कीमती

●

चित्र उलटा कर के देखो, तो होगा तुम्हे यह अनुमान
उसके मनोरंजन का साधन, उसके रुतबे के ही समान

नृत्य करती हुई अब देखो, तीन सुंदर जवां नारीयाँ
पेट की खातिर या मजबूरी से, नाच रही है बेचारीयाँ
बहुत बड़ी नृत्यशाला है, अर्धगोल है जिसकी छत
साज सज्जासे सजी हुई, जल रही शमांयें यहां बहुत

तात्पर्य
युग युग से दुनिया ना बदली, और ना बदला यह इन्सान
पर समय समय पर रहा बदलता, इसके मनोरंजन का सामान
हर समय इन्सान का दिल, कोई भी मनोरंजन ना बहलाये
पल दो पल तो लगे वो अच्छा, फिर दिल उससे भी ऊबजाये
अपने मन को बहलाने को, सौ यतन करे इन्सान बेचारा
कस्तूरी का मृग यूं ढूंढे खुशबू, घूमे जंगल मारा मारा

पुस्तकें मिलीं

बोल उठे हैं चित्र
विवेक मिश्र , 123 सीपीकेटी-सी
मयूर विहार, फेज़ 2 दिल्ली-110091
मोबाइल 9810853128

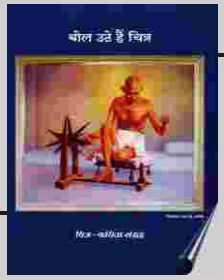

वापिसी व अन्य कहानियाँ
सुखवर्ष कंवर 'तन्हा'
2010, कलावती प्रकाशन, नई दिल्ली
पी-4 , पिलंजी सरोजनी नगर,
नई दिल्ली-110023
मूल्य - 300 रुपये

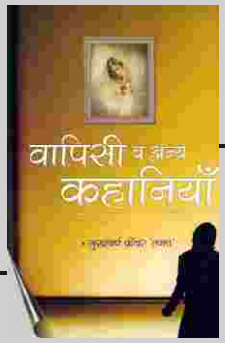

सेरीना (उपन्यास)
लेखक-वेदप्रकाश कंवर
संस्करण-2010
कलावती प्रकाशन, पिलंजी सरोजनी नगर,
नई दिल्ली-110023
मूल्य-300 रुपये

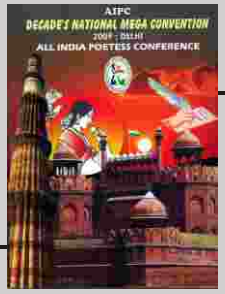

बानवे बसंत
लीलावती बंसल
माला प्रकाशन, सी-10,
ग्रीन पार्क (मेन),
नई दिल्ली-110016
संस्करण - 2009
मूल्य - 100 रुपये

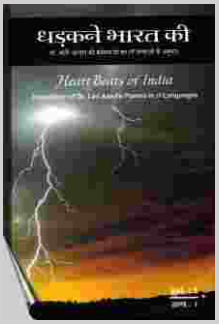

धड़कनें भारत की
डॉ. लारी आज़ाद की कविताओं का
19 भाषाओं में अनुवाद खंड-1
सुलभ साहित्य अकादमी
सम्पादक - डॉ. मेहता, डॉ. कृष्नकुमार,
डॉ. दाऊ जी गुप्ता
प्रकाशक - अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन
229, पंजाबियान, खुर्जा-203131
उत्तरप्रदेश, भारत
प्रथम संस्करण - 2010

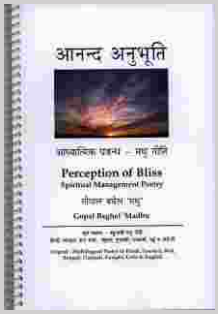

आनंद अनुभूति
गोपाल बघेल (मधु), केनेडा
पब्लिशर्स : आशा बघेल
मूल्य - 12 यू.एस. डॉलर

सौरभ
न्यूआर्क से प्रकाशित त्रैमासिक हिंदी पत्रिका
अप्रैल-जून 2010
प्रकाशक : अखिल विश्व हिंदी समिति
108-1568, ड्राइव, फारेस्ट हिलस,
न्यूयार्क-11375
मूल्य (अमेरिका) - 15 डॉलर वार्षिक
मूल्य (भारत) - 500 रुपये

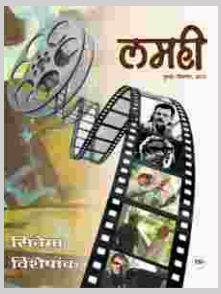

लमही
प्रकाशन - लखनऊ
जुलाई-सितम्बर
3/343 विवेक खण्ड
गोमती नगर, लखनऊ-226010

Dr. Varsha Vyas B.D.S, D.M.D.
Dental Surgeon

Prompt Emergency care
All Aspects of Dental Care
Teeth Whitening
Evening and Saturday appointments
Hindi, Punjabi & Gujrati spoken

Please call for immediate appointment:

#6 ....55 Harvest Moon Drive, (Steeles & Birchmount)
Markham, Ont. L3R 4C3 Tel. No. : 905-947-0040

BMS graphics

Choose from a variety of
Birthday - Mundan - Janoi - Anniversary
Indian & western

Wedding Invitations
Choose your own language

शादी, मुंडन,सालगिरह, जनेऊ कोई भी हो शुभ संस्कार।
हर प्रकार के निमंत्रण के लिए हमारी सेवायें हैं सदा तैय्यार।।

21 Bradstone Square, Scarborough, (Toronto) Ontario M1B 1W1
Tel: 416.803.7949 416.292.7959 Fax: 416.292.7969
E-mail: bmsgraphics@rogers.com

सियैटल में झिलमिलाया

'झिलमिल' हास्य कवि सम्मलेन

(बाएँ से दायें) - अंकुर गुप्त, अनु गर्ग, निहित कौल, अभिनव शुक्ल, अगस्त्य कोहली, सूरज कमार, रेणु राजवंशी गुप्त एवं डॉ बिन्देश्वरी अग्रवाल इकवि सम्मलेन के बाद का एक दृश्य

कार्यक्रम का संचालन करते हुए अभिनव शुक्ल तथा मंच पर रेणु राजवंशी गुप्त एवं डॉ बिन्देश्वरी अग्रवाल

जुलाई 26, 2010, सियैटल, संयुक्त राज्य अमेरिका: हिंदी भाषा का जो स्वरुप कविताओं में उजागर होता है वह अत्यंत आनंद प्रदान करने वाला होता है. सधे हुए कवि सम्मेलनों में प्रस्तुतिकरण के कौशल द्वारा कविताओं की मिठास में चार चाँद लग जाते हैं. यदि बात हास्य कविताओं की हो रही हो तो फिर मिठास और आनंद का एक नाभकीय विस्फोट होता है. सिएटल नगरी में इस सदी के प्रथम हास्य कवि सम्मलेन का आयोजन 26 जून 2010 को हुआ. सांस्कृतिक संस्था प्रतिध्वनि की ओर से प्रस्तुत हास्य कवि सम्मलेन, झिलमिल 2010 में शताधिक श्रोताओं नें लगभग चार घंटे तक अनेक चटपटी और झिलमिलाती हुई हास्य कविताओं का रसास्वादन किया. विभूति नें मां सरस्वती की वंदना कर कार्यक्रम को प्रारंभ किया. इस कवि सम्मलेन में न्यू यार्क से पधारी डॉ बिन्देश्वरी अग्रवाल, सिनसिनाटी से आई रेणु राजवंशी गुप्त एवं सियैटल नगरी से अंकुर गुप्त, अनु गर्ग, निहित कौल, अगस्त्य कोहली, सूरज कुमार एवं अभिनव शुक्ल नें अपनी कविताओं का पाठ किया. कार्यक्रम का संचालन अभिनव शुक्ल नें किया. नगरी में पहली बार हुए इस आयोजन को श्रोताओं नें खूब सराहा और आशा व्यक्त करी कि भविष्य में और भी कवि सम्मेलनों से सियैटल को झिलमिलाता रहना चाहिए.

आप झिलमिल कि वेबसाइट यहाँ देख सकते हैं:

www.pratidhwani.org/jhilmil

अभिव्यक्ति के बढ़ते कदम बनाम दस वर्ष

मधु अरोड़ा, मुंबई

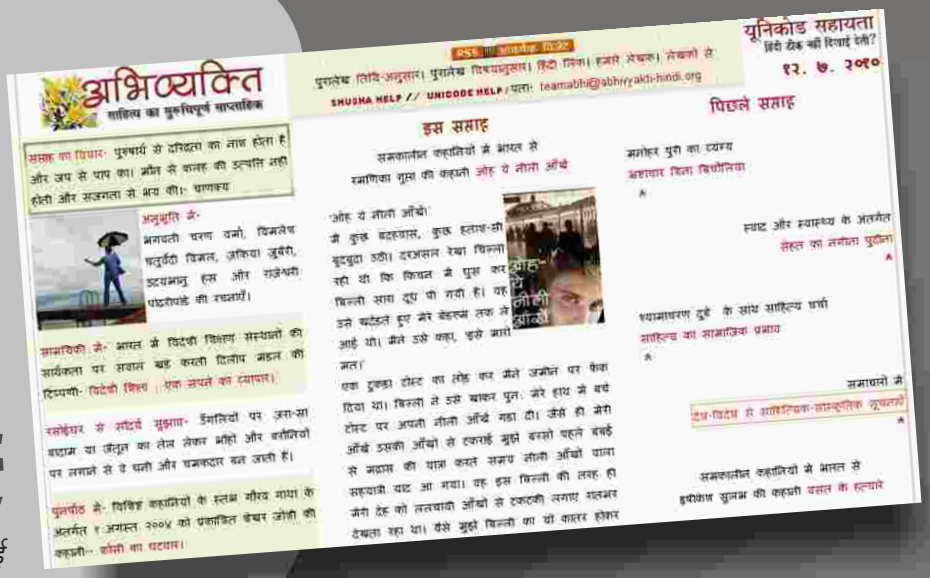

अभिव्यक्ति याने एक ऐसी वेब पत्रिका जहां आप अपनी अनुभूतियों को सहजता से, बिना किसी कुंठा के व्यक्त कर सकते हैं। जी हां, मैं बात कर रही हूं शारजाह से पूर्णिमा वर्मन द्वारा संचालित जाल पत्रिका 'अभिव्यक्ति' की। 15 अगस्त, 2010 को यह पत्रिका अपनी सफलता के 10 वर्ष पूरे कर रही है।

इन 10 वर्षों के सफर में इस पत्रिका ने कितने संघर्ष झेले, इसके लिये इसके शुरुआती वर्षों को देखना होगा। सन् 2000 में जब यह पत्रिका शुरू हुई तो संसाधनों की ख़ासी कमी थी। न निश्चित फांट, न पत्रिका के निकलने का नियत समय। परदेस में जहां लोगों से बात करने के लिये उनसे पहले से समय मांगना पड़ता है ताकि कुछ कह सकें। मुझे याद आता है कि पूर्णिमाजी आकृति फांट में रचनाएं मांगती थीं, कई बार रोमन में हिन्दी में टाइप करके रचना भेजने को कहतीं और फिर अपनी सखी और अभिव्यक्ति टीम की सदस्या दीपिका जोशी से हिन्दी में टाइप करवातीं और फिर पत्रिका में छापतीं। अपनी इस कड़ी मेहनत से विदेशों में बसे भारतीयों के लिये पढ़ने की ऐसी सामग्री तैयार कर रही थीं जो उनके नास्टेलेजिया में दवा का काम करे। नतीजा आपके सामने है कि पाठक हर सोमवार अभिव्यक्ति के अंक का बेसब्री से इन्तज़ार करते हैं।

इस पत्रिका की एक विशेषता यह है कि इसमें छपनेवाली कहानियां अधिकतम 3 पृष्ठ की होती हैं। इस बाबत पूर्णिमाजी का मानना है कि आज की आपाधापी के समय में पाठक इससे बड़ी कहानी पढ़ने का समय नहीं निकाल पाता और विदेशों में तो बिल्कुल नहीं। कहानी के अतिरिक्त छोटे आलेख, व्यंग्य, देश-विदेश की ख़बरें, बच्चों के लिये फुलवारी कालम, लजीज़ पकवान, विशेषांक सभी कुछ तो समाहित है इस पत्रिका में। मुझे तो यह पत्रिका गागर में सागर लगती है। इसमें जो भी सामग्री प्रकाशित होती है उसका अपना एक स्तर है और इस मामले में पूर्णिमाजी कोई समझौता नहीं करतीं।

अभिव्यक्ति के स्तर को बनाये रखने का मूल मंत्र है कि उसकी नकेल अपने हाथ में रखना। इस बात को मैं बिना किसी संकोच के कह सकती हूं कि पत्रिका का रिमोट पूर्णिमाजी के हाथों में है। वे किसी व्यक्ति विशेष से प्रभावित नहीं होतीं। उनका मानना है कि एक पत्रिका को सतत चलाने एवं दाग़दार होने से बचाने के लिये व्यक्ति पूजा से बचना होता है। कोई भी ख़ुद को उपेक्षित न समझे। उनके अनुसार चढ़ते सूरज को तो हर कोई पूजता है, नये लोगों को भी छपने का अवसर मिलना चाहिये और वे यह अवसर बाक़ायदा प्रदान करती हैं।

अभिव्यक्ति क़रीब १४० देशों के पाठकों द्वारा पढ़ी जाती है। इसकी लोकप्रियता का एक

कारण यह भी है कि यदि पाठक हिन्दी शब्द नहीं खोल पा रहा है तो वे आन लाइन आकर पाठक की ये मुश्किल ख़ुद हल करने में सहायता करती हैं। उनकी इस दरियादिली की मैं ख़ुद सबसे बड़ा उदाहरण हूं। मैं कंप्यूटर पर काम करने में शून्य थी। पर यह पूर्णिमाजी का बड़प्पन था कि उन्होंने आन लाइन रहकर मुझे एक-एक कमांड सिखाया और मैंने अपना काम ख़ुद करने का अपने अन्दर ज़ज्बा पैदा किया। उन्होंने मुझे एक पेज़ बनाकर दिया और यह जिम्मेदारी दी कि अभिव्यक्ति की सूची में दर्ज़ लेखकों के बायोडाटा में उनके जन्म तारीख पता करके उनको उस दिन कार्ड भेजा जाये। मैंने करीब दो या तीन वर्षों तक इस काम को अंजाम दिया। पूर्णिमाजी को यह अच्छी तरह पता है कि यदि पत्रिका के अस्तित्व में रखना है तो काम को सही रूप में अंजाम देना होगा। वे पाठकों के प्रति अपने इस कर्तव्य को पूरे जुनून के साथ पूरा करने के लिये प्रयत्नशील हैं।

उनकी इस लगातार मेहनत, लगन और कमिटमेंट का परिणाम हम सभी के सामने है। यह पत्रिका साप्ताहिक पत्रिका के रूप में हर सोमवार को अपने नये कलेवर में साइट पर आ जाती है। आज आप इस पत्रिका में आये परिवर्तन को निश्चित रूप से देख पाते होंगे। पूर्णिमाजी ने शारजाह और उसके आसपास के शहरों के हिन्दी लेखकों को एक मंच पर लाने के लिये चौपाल शुरू की है जहां कभी नाटक खेले जाते हैं तो कभी गंभीर विषयों पर विचार-विमर्श होता है। दूसरी तरफ उन्होंने नवगीत श्रृंखला शुरू की है जहां आप अपने गीत भेज सकते हैं। यदि नवगीत लिखने में कोई दिक्कत आती है और यदि पूर्णिमाजी से शेयर करते हैं तो वे नवगीत लिखने के ग़ुर बताती हैं और वह भी बिना किसी शुल्क के। मज़ेदार बात यह भी है कि वे कभी इस बात का दिखावा नहीं करतीं कि वे कंप्यूटर की दुनियां की इतनी जानकार हैं और एक शब्द में कहें तो वे बेताज बादशाह हैं।

आप पूर्णिमाजी की विनम्रता का अन्दाज़ इसी बात से लगा सकते हें कि वे कभी किसी से रचना भेजने के लिये ज़ोर-ज़बर्दस्ती नहीं करतीं। उनका मानना है कि कोई भी काम और विशेष रूप से हिन्दी के प्रचार-प्रसार का काम ज़ोर-ज़बर्दस्ती से बिल्कुल नहीं करवाया जा सकता। विनम्रता पहली शर्त है और इसका परिणाम हम सबके सामने है। वे बेशक़ किसी भी लेखक या अभिव्यक्ति की टीम को पारिश्रमिक नहीं देतीं पर उनके प्रति अपना जो विश्वास, अपनापन जतलाती हैं उससे सभी अभिभूत हैं और पत्रिका को बिना किसी रुकावट के प्रकाशित करने में अपना सहयोग दे रहे हैं। भारत में पत्रिका में छपने के लिये कितनों का आसरा तकना पड़ता है, पहचान निकालनी पड़ती है और अग़र आप किसी की जी-हुजूरी में नहीं हैं तो अपना पत्ता साफ समझिये। अभिव्यक्ति इन सारे दुराग्रहों से परे चुपचाप शालीनतापूर्ण तरीके से अपना काम कर रही है। पूर्णिमाजी रचना देखती हैं, चाहे वह मुख्यधारा से प्रेरित है या नहीं, इससे उनको कोई फर्क़ नहीं पड़ता। वे नाम नहीं बल्कि काम देखती हैं। यह पत्रिका पेशेवर या धन कमाने की पत्रिका नहीं है बल्कि विशुद्ध रूप से स्वस्थ मनोरंजन और ज्ञान प्रदान करने वाली पत्रिका है। यह पत्रिका नकारात्मक सोच को प्रश्रय नहीं देती।

अभिव्यक्ति को १० वर्ष पूर्ण हो रहे हैं याने यह पत्रिका अपने बचपन को धीरे-धीरे पीछे छोड़ते हुए वय:संधि की तरफ अग्रसर होने की तैयारी में है और पूर्णिमाजी के अनुभवों से निरन्तर आगे बढ़ेगी। अभिव्यक्ति को १० वर्ष की होने की ढेर सारी बधाई और जन्मदात्री पूर्णिमाजी को इसकी सफलता के लिये शुभकामनाएं। ◆◆◆

वोन लाइब्रेरी की ओर से आयोजित हिन्दी कवि गोष्ठी

विगत दिनों वोन की वुडब्रिज लाइब्रेरी में पहली बार कवि-गोष्ठी का आयोजन हुआ. इस गोष्ठी के अध्यक्ष वान क्षेत्र, वुडब्रिज लाइब्रेरी के पदाधिकारी श्री सुब्रमनियम थे. इसका संचालन श्रीमती सरोज सोनी एवं श्री श्याम त्रिपाठी ने किया.

इस साहित्यिक कार्यक्रम का प्रारम्भ श्रीमती रक्षा साहनी के राष्ट्रीय गान से हुआ. गोष्ठी में उपस्थित देवेन्द्र मिश्रा, हास्य कवि सुरेन्द्र पाठक, भारतेंदु श्रीवास्तव, भारत से आये वेद प्रकाश कंवर, उनकी पत्नी सुखवर्ष तन्हा, सुधा मिश्रा, प्रेम मलिक, स्नेह सिंघवी, प्रोमिला भार्गव, संदीप त्यागी, सरोज सोनी व श्याम त्रिपाठी थे. यह गोष्ठी समय से प्रारम्भ हुई और समय से समाप्त हुई. सभी कवियों ने बड़े उत्साह और सद्भाव से अपनी-अपनी रचनाएँ पढ़ीं. कविताओं में विभिन्नता और रोचकता थी. श्रोताओं ने कविताओं का भरपूर आनंद लिया और करतल ध्वनि से कवियों का उत्साह बढ़ाया. कार्यक्रम अत्यंत रोचक और सफल रहा.

अंत में सभी ने स्वादिष्ट जलपान का आनंद लिया और एक दूसरे से मिल जुलकर विदाई ली. निसंदेह यह कवि गोष्ठी एक स्मरणीय संध्या बन गई. हम सभी वान लाइब्रेरी के पदाधिकारी श्री सुब्रामनियम के बहुत आभारी हैं जिनके सहयोग से यह कार्यक्रम सफलतापूर्वक आयोजित हो सका. उम्मीद है कि भविष्य में भी इस प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करते रहेंगे.

प्रस्तुति : सरोज सोनी, केनेडा

FAMILY DENTIST

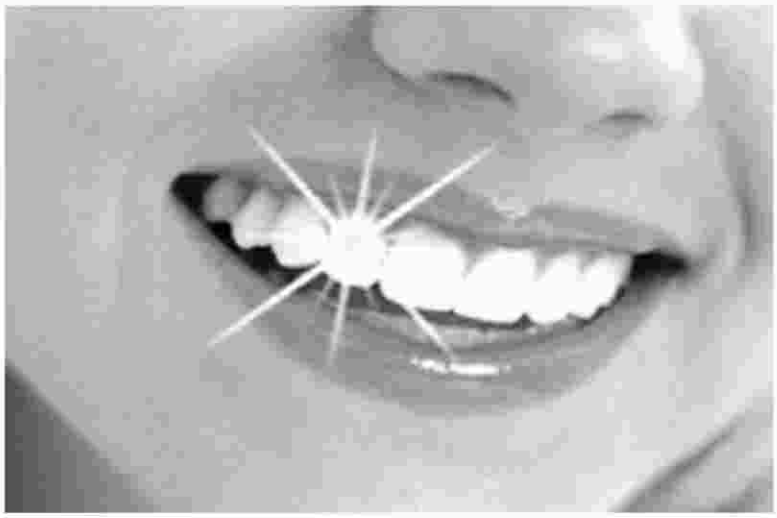

Dr. N.C. Sharma
Dental Surgeon

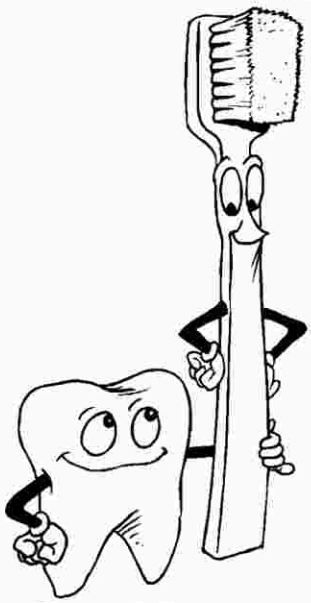

Dr. C. Ram Goyal
Family Dentist

Dr. Narula Jatinder
Family Dentist

Call us at: 416-222-5718

1100 Sheppard Avenue East, Suite 211, Toronto, Ontario M2K 2W1 Fax: 416-222-9777

Mistaan Catering & Sweets Inc.

Specializing in Bengali Sweets We do catering for Weddings & Parties

मिष्ठान की मिठाइयाँ

मिष्ठान की मिठाइयाँ
खाओ रसगुल्ले और रस मलाइयाँ

Our Daily Take-out Foods include:

Channa Bhatura	Aloo Ghobi
Malai Kofta	Matter Paneer
Channa Masala	Chicken Masala
Chicken Tikka	Tandoori Chicken
Butter Chicken	Goat Curry

& many more delicious items

अब आप बैठ कर खाने-पीने का आनन्द ले सकते हैं

460 McNicoll Avenue, North York, Ontario M2H 2E1

Visit Our Website: www.mistaan.com

Telephone: (416) 502-2737 Fax: (416) 502-0044

RAMA BAHRI

416-565-2596

Win a BMW car

When you buy or sell through me you have a chance to win a new BMW

GTA Realty Inc., Brokerage
Bus: 416.321.6969
Fax: 416.321.6963
206 - 1711 McCowan Rd., Scarborough, ON. M1S 3Y3

HomeLife GTA

GTA Realty Inc., Brokerage

किरपाल कौर धीमान, यू.एस.ए.

समंदर

समंदर के पहलू में कई बार गई हूँ
इस बार कुछ अलग महसूस कर रही हूँ
ऐसा एहसास हो रहा है
समंदर की रेत की तरह
हर लहर के साथ
ज़िन्दगी का काफ़ी कुछ
गुमा दिया है मैंने
जीवन के थपेड़ों की लहरों में

बहुत कुछ लुटा दिया है मैंने...
बह गई रेत
वापिस नहीं आती किनारों पर
ठीक उसी तरह चले गए जो
लौट नहीं पाते अपनों में...

बेटे को इसकी लहरों में
खेलते, खिलखिलाते देखा था
हमसफर को इन लहरों में
प्यार जताते देखा था
नातिनों को इन में
अठखेलियाँ करते देखा है...

समंदर में
मेरे बेटे की अठखेलियाँ खो गईं
समंदर में ही
मेरे बेटे की अस्थियाँ खो गईं
अन्तिम इच्छा है
खो जाऊँ इसकी लहरों में एक दिन
मिल सकूँ बेटे से एक दिन...

समंदर के पहलू में कई बार गई हूँ...
इस बार कुछ अलग महसूस कर रही हूँ...

Hindi Pracharni Sabha

(Non-Profit Chatitable Organization)

Membership Form

For Donations and Life Membership we will provide a Tax Receipt

Annual Subscription: **$25.00 Canada and U.S.A.**

Life Membership: **$200.00**

Donation: **$ _____**

Method of Payment: **cheque, payable to " Hindi Prachani Sabha"**

Name:_____

Address: _____

_____

Telephone: Home: _____Business_____

e-mail:_____

****

Contact in Canada:

Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham, Ontario L3R 3R1
Canada
(905)-475-7165
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:

Dr. Sudha Om Dingra
101 Guymon Court
Morrisville, North Carolina
NC27560, USA
(919)-678-9056
e-mail: ceddlt@yahoo.com